

मोक्षशास्त्र प्रवचन नवम् भाग

मोक्षमार्गस्य, नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृतां ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानाम् बन्दे तद्गुणलब्धये ॥

प्रत्यक्षज्ञानोंके वर्णनका प्रारम्भ अब प्रत्यक्षज्ञानोंमें सर्वप्रथम अवधिज्ञानका वर्णन कर रहे हैं। अवधिज्ञानका भेद प्रभेद पूर्वक वर्णन चलेगा। इस कारण प्रथम कुछ उसके भेद प्रभेद जानना आवश्यक है। अवधिज्ञान दो प्रकारका कहा गया है (१) भवप्रत्ययक अवधिज्ञान और (२) क्षयोपशमप्रत्ययक अवधिज्ञान। भवप्रत्ययक अवधिज्ञान उसे कहते हैं कि जो अवधिज्ञान अपने योग्य नियत भवको पाकर नियमसे उत्पन्न ही हो। चाहे वह सम्यग्ज्ञान रूप हो, चाहे मिथ्याज्ञान रूप हो, पर उस भवमें अवधिज्ञान होता ही है। ऐसा होनेपर भी अवधिज्ञानावरणका क्षयोपशम भी आवश्यक ही है। सो वहाँ होता ही है। दूसरा अवधिज्ञान है क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान। याने जो अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमका निमित्त पाकर हो उसे कहते हैं क्षयोपशमनिमित्तक याने भव कारण नहीं है। इनमेंसे क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञानके तीन भेद हैं देशावधि, सर्वावधि और परमावधि। देशावधि अवधिज्ञान भवप्रत्ययक भी है और क्षयोपशमनिमित्तक भी होता है। सर्वावधि और परमावधि ज्ञान भवप्रत्ययक नहीं होता। इसी प्रकार अवधिज्ञानके और-और भी प्रकारसे भेद-प्रभेद हैं, जो कि सूत्रके प्रकरणमें वर्णित किये जायेंगे। अब यहाँ प्रथम भवप्रत्यय अवधिज्ञानका वर्णन कर रहे हैं।

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥ २१ ॥

भवप्रत्यय अवधिज्ञानकी भवप्रत्ययता भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव और नारकियोंके होता है अर्थात् देवगतिमें जिसका जन्म हो और नरकगतिमें जिसका जन्म हो, ऐसे जीवोंके अवधिज्ञानावरणका यथासम्भव क्षयोपशम होता ही है और उस भवमें वे जीव नियमसे अवधिज्ञान प्राप्त करते हैं, इसी कारण इसको प्रत्ययअवधिज्ञान कहते हैं। भवका अर्थ क्या है? आयुर्कर्म और नाम कर्मके उदयविशेषसे जो आत्माका पर्याय होता है उसे भव कहते हैं। भवमें मुख्य कारण आयुर्कर्म और नामकर्मका उदयविशेष है, पर साथ ही अनेक कारणोंकी अपेक्षा होती है। उस भवका जहाँ प्रत्यय है; अर्थात् निमित्त है उसे भवप्रत्यय अवधिज्ञान कहते हैं। प्रत्यय शब्दके अनेक अर्थ होते हैं, लेकिन विवक्षावश उसका अर्थ लगाया जाता है। जैसे प्रत्ययका अर्थ ज्ञान भी है। जैसे अर्थ और शब्द प्रत्यय करना याने ज्ञान करना। प्रत्ययका अर्थ शपथ लेना भी है। जैसे कहते हैं कि इसने अमुक पापके त्यागका प्रत्यय

किया है, याने जैसे किसीको दोष कोई लोग लगाये, दूसरेका धन चुरानेका कोई आरोप करे तो कोई कहता है कि अजी यह तो चोरीके त्यागका प्रत्यय किए हुए है। तो प्रत्ययका अर्थ कहीं शपथ ग्रहण करना है, कहीं प्रत्ययका अर्थ हेतु लिया जाता, कारण लिया जाता। जैसे कहते हैं कि संस्कार अविद्याप्रत्ययक होता है अर्थात् अज्ञानके कारणसे संस्कार होता है। इस तरह भवप्रत्यय शब्दसे यह ध्वनित हुआ कि देव और नारकियोंके उस भवमें अवधिज्ञान होता ही है।

भवप्रत्ययक अवधिज्ञानमें भी अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमकी अनिवार्यता होनेपर भी भवप्रत्ययकता होनेके कारण अब यहाँ एक आशंका होती है कि भवप्रत्ययक अवधिज्ञान जो कहा है सो क्या उसमें अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमकी आवश्यकता नहीं है? उत्तर यह है कि अवधिज्ञानावरणका क्षयोपशम तो अंतरंग कारण है याने अवधिज्ञानावरणका क्षयोपशम हुए बिना तो अवधिज्ञान हो ही नहीं सकता। वह तो एक अंतरंग और साधारण कारण है याने सर्वत्र अवधिज्ञानमें अवधिज्ञानावरणका क्षयोपशम होता ही है। फिर भी एक यह विशेषता बतानेके लिए कि एक देव और नारकीका भव ऐसा है कि उस भवमें अवधिज्ञानावरणका क्षयोपशम होता है और अवधिज्ञान होता है। यदि अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशम बिना देव और नरकगतिमें अवधिज्ञान होने लगे तब तो यह आपत्ति होगी। यह प्रसंग आयगा कि सभी देव और नारकियोंमें फिर तो एक समान अवधिज्ञान होना चाहिए, लेकिन ऐसा वहाँ नहीं है। कम अधिक अवधिज्ञान पाये जाते हैं। तब फिर यह पूछा जा सकता है कि फिर भव कारण क्या रहा? जब अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमके अनुसार अवधिज्ञानकी विशेषता है तो उसमें भवकी बात क्या रही? सो उसका उत्तर यह है कि तिर्यच और मनुष्योंके तो कुछ न कुछ व्रत नियम आदिक होनेके कारण अवधिज्ञानावरणका क्षयोपशम और अवधिज्ञान होता है, परन्तु देव और नारकीके व्रत, तप आदिक नहीं होते, क्योंकि देव और नारकियोंके अधिकसे अधिक चौथा गुणस्थान कहा गया है। सदा वे असंयमी रहते हैं। तो व्रत, नियम आदिकका वहाँ अभिप्राय भी नहीं होता। वहाँ तो भवको निमित्त करके ही इस प्रकारका कर्मोदय है कि संयम नहीं हुआ करता। तब फिर वहाँ बाह्यसाधन क्या है? सो तो कुछ है नहीं, याने मनुष्य और तिर्यचोंके बाह्यसाधन तो व्रत, नियम आदिक हैं, जिनकी विशेषता पाकर यथासम्भव योग्यतासे अवधिज्ञान बनता है। तो जब बाह्यसाधन व्रत, नियम आदिक देव और नारकियोंके नहीं हैं तब भव ही एक बाह्य साधन है। यह बात अपने आप सिद्ध होती है। इसी कारणसे देव और नारकियोंके अवधिज्ञानको भवप्रत्ययक अवधिज्ञान कहा गया है।

समस्त देव नारकियोंमें सुअवधिज्ञान न होनेका कारण अब यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि जब बाह्य साधन तो हैं नहीं, केवल भवका ही निमित्त पाकर होता है तब तो देव और नारकियोंके अवधिज्ञान जैसे कहा तो मिथ्यादृष्टियोंके भी अवधिज्ञान ही बनेगा। सो यह जिज्ञासा इस तरह शान्त करनी चाहिए कि देखो यह प्रकरण है सम्यक्ज्ञानके अधिकारका याने वस्तुका स्वरूप कहा जाता है तो उसके साधन बताये जा रहे हैं। प्रमाण और नयोंसे वस्तुका अधिगम होता है। तो वस्तुकी यथार्थ जानकारी सम्यग्ज्ञानसे ही तो हो सकेगी। समस्त वर्णन इस प्रसंगमें सम्यग्ज्ञानका चल रहा।

मिथ्यादृष्टि जीवके अवधिज्ञान नहीं होता, किन्तु कुअवधिज्ञान, जिसका दूसरा नाम है विभंग अवधिज्ञान, वह होता है। तब यह विभाग करना चाहिए कि देव और नारकियोंमें सम्यग्दृष्टियोंके तो अवधिज्ञान होता है और मिथ्यादृष्टियोंके कुअवधिज्ञान होता है। तो पूर्व सम्बन्धसे यहाँ यह समझना चाहिए कि यह सम्यग्ज्ञानका प्रकरण है अथवा इस तरह भी समझ सकते हैं कि कुछ आगे चलकर यह कहा जायगा इसी अध्यायमें कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान ये विपरीत भी होते हैं तो जब आगे विपर्ययका संकेत किया है तो उससे पहले-पहले यह सिद्ध हो जाता है कि यह सब सम्यग्ज्ञानका प्रकरण है।

देव नारकाणां शब्दमें देव शब्दका प्रथम कहनेका कारण अब यहाँ एक आशंका होती है कि आगममें जब भी गतिके भेद कहे गए हैं तो नरकगतिसे शुरू किया गया। गतियाँ चार होती हैं (१) नरक, (२) तिर्यच, (३) मनुष्य और (४) देव। तो जब नरक शब्दका प्रथम ही कथन होता है तो इस सूत्रमें नरक शब्दको पहले रखना था याने भवप्रत्यय अवधिज्ञान नारक और देवोंके होता है, ऐसा ही सूत्र बनाते, देव नारकाणां कहनेके बजाय नारक देवाणां, ऐसा कहना था। इस शंकाका समाधान करते हैं कि देखिये शब्दोंके पूर्व निपात करनेके मुख्य दो कारण हुआ करते हैं। एक तो थोड़े स्वर होना, दूसरा कुछ महिमा वाला होना। सो दोनों ही बातें देव शब्दमें घटित होती हैं। देव शब्दमें दो स्वर हैं जो कि तीन भाषाओंमें हैं, और नारक शब्दमें तीन स्वर हैं जो कि चार मात्राओंमें हैं। तो थोड़े स्वर देव शब्दमें मिले, इस कारणसे देव शब्दको पहले रखा गया है। लोकप्रवृत्ति भी ऐसी ही देखी जाती है। अगर दो-तीन बच्चोंका नाम लेना है तो जिस बच्चेके नाममें बहुत थोड़े शब्द होते हैं उसका नाम पहले लिया जाता है। ऐसी प्राकृतिक बात भी है। तो इस ही कारण देव शब्द यहाँ पहले रखा है। दूसरा कारण यह है कि देवकी महिमा अधिक है। लौकिक जन भी देवगतिकी महिमा गाते हैं और देव होनेकी वांछा भी रखा करते हैं और प्रयोगमें भी देवगतिके जीवोंके सुख विशेष हैं उनको समवशरणमें जाना और अकृत्रिम चैत्यालयोंकी वन्दना करना आदिक सुविधायें प्राप्त हैं, इसलिए देव अभ्यर्हित याने महिमा वाले हैं, इस कारणसे देव शब्द ही पूर्वमें प्रयोग करनेके योग्य है।

भवनवासी, व्यन्तर व ज्योतिषी देवोंके जघन्य व उत्कृष्ट अवधिज्ञानकी सीमा अब इन देव नारकियोंके अवधिज्ञान किस-किस प्रकार कम बढ़ होता? इस विषयमें सर्वप्रथम देवोंका अवधिज्ञान देखिये कि किसका कितना अवधिज्ञान होता है? देव चार निकायोंमें विभक्त होते हैं (१) भवनवासी, (२) व्यन्तर, (३) ज्योतिषी और (४) वैमानिक। भवनवासी १० प्रकारके होते हैं असुरकुमार, नागकुमार आदिक। तो जिनमें दोनों प्रकार इन भवनवासियोंके जघन्य अवधिज्ञान २५ योजनाका होता है याने कमसे कम २५ योजन तककी बातको ये जान लेते हैं। उत्कृष्ट अवधिज्ञानमें असुरकुमारके भवनवासियोंका असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन है, याने असुरकुमार भवनवासी देव अवधिज्ञानसे इतने बड़े दूर तक याने असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन तक जायेंगे, नीचे जानेंगे। ऊपरकी ओर नहीं है इतना ऊँचा अवधिज्ञान, और ऊपर जायेंगे तो ऋजुविमानके ऊपर तक ही जानेंगे याने

इस मध्यलोकमें जो सुमेरुपर्वत है उसकी चोटी जहाँ समाप्त होती है वहाँ प्रथम कल्पका प्रथम विमान ऋजुविमान है। तो ऋजुविमानका जो ऊपरी हिस्सा है वहाँ तक जानेंगे, पर शेषके नागकुमार आदिक ६ प्रकार तो भवनवासी उनका अवधिज्ञान उत्कृष्ट तो असंख्यात योजन है सो वह नीचे है। ऊपर तो केवल सुमेरुपर्वतकी चूलिका तक है, याने मध्यलोक तक ही इनका अवधिज्ञान ऊपर चलता है, नीचे विशेष है। और अगल-बगल याने पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तरकी ओर असंख्यात योजन है। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी ये तीन देव छोटे देव माने गए हैं अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वमें मरण कर इन तीन प्रकारके देवोंमें उत्पन्न नहीं होते। हाँ उत्पन्न हुए बाद पौरुषबलसे इनके सम्यग्दर्शन हो सकता है। अब व्यन्तरोंमें कैसा अवधिज्ञान होता है? तो व्यन्तर होते हैं ८ प्रकार के (१) किन्नर, (२) कुम्पुरुष, (३) महोरग, (४) गंधर्व, (५) यक्ष, (६) राक्षस, (७) भूत, (८) पिशाच। तो इन ८ प्रकारके देवोंका जघन्य अवधिज्ञान तो २५ योजन है, जैसा कि भवनवासियोंका भी है, अच्छा और उत्कृष्ट अवधिज्ञान इनके असंख्यात हजार योजन है याने ये असंख्यात हजार योजन तककी घटनायें जान लेते हैं, किन्तु यह उत्कृष्ट अवधिज्ञान नीचेकी ओर है।

यहाँ एक बात और विशेष समझनी कि यह अवधिज्ञान शब्द ही यह बतला रहा है कि जो ज्ञान नीचे-नीचे अधिक-अधिक अवधि रखे उसे अवधिज्ञान कहते हैं। आठों प्रकारके व्यन्तरोंका जघन्य अवधिज्ञान २५ योजन तकका है व इन ही व्यन्तरोंका उत्कृष्ट अवधिज्ञान असंख्यात हजार योजनका विषय वाला है और ऊपरमें अपने ही विमानसे अपर पर्यन्त मायने जो जिस विमानमें रह रहा है, जिस आवासमें रहता है उस आवासके ऊपर तक ही जान पड़ता है और व्यन्तरोंका पूर्व, पश्चिम आदिक दिशाओंमें असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन है। ज्योतिषी देवोंका जघन्य अवधिज्ञान संख्यात योजन तकका है और वह नीचेकी ओर है तथा नीचे ही उत्कृष्ट अवधिज्ञान असंख्यात हजार योजन तकका है और ऊपर अपने विमानके ऊपर पर्यन्त और तिर्यक् रूपमें असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन है।

कल्पोपपन्न वैमानिक देवोंके जघन्य व उत्कृष्ट अवधिज्ञानकी सीमा अब वैमानिक देवोंकी चर्चा सुनो वैमानिक देव दो भागोंमें विभक्त हैं (१) कल्पोपपन्न, (२) कल्पातीत। सोलह स्वर्गोंको कल्प कहते हैं। सोलह स्वर्गोंमें उत्पन्न हुए देवोंका नाम कल्पोपपन्न है और सोलह स्वर्गोंसे ऊपर जो नवग्रैवेयक, ६ अनुदिश और ५ अनुत्तर विमान हैं, इनमें उत्पन्न हुए देवोंका नाम कल्पातीत। तो प्रथम कल्पोपपन्न देवोंकी बात कही जा रही है। इन वैमानिकोंमें सौधर्म और ईशान दो स्वर्गोंके देवोंका जघन्य अवधिज्ञान तो उतना है जितना कि ज्योतिषी देवोंका उत्कृष्ट अवधिज्ञान है अर्थात् असंख्यात हजार योजन प्रमाण तक जघन्य अवधिज्ञान जानता है, और इन दो स्वर्गोंके देवोंका उत्कृष्ट अवधिज्ञान रत्नप्रभा नामकी पहली पृथ्वीके नीचे तक है, याने पहले नरक तक है। तीसरे और चौथे स्वर्गोंके देवोंका जघन्य अवधिज्ञान तो उतना है जितना प्रथम द्वितीय स्वर्गके देवोंका उत्कृष्ट अवधिज्ञान याने इनका जघन्य अवधिज्ञान पहली पृथ्वीके नीचे तक और उत्कृष्ट अवधिज्ञान दूसरी पृथ्वीके नीचे तक है, याने तृतीय, चतुर्थ स्वर्गके देव अधिकसे अधिक दूसरे नरक तककी बात जान

लेते हैं। ५वें, ६वें, ७वें, ८वें स्वर्गके देवोंका जघन्य अवधिज्ञान उतना है जितना कि तृतीय, चतुर्थ स्वर्गके देवोंका है, याने जघन्य रूपसे ये द्वितीय पृथ्वीके नीचे तकका हाल जानते हैं और उत्कृष्ट अवधिज्ञान तीसरे नरकके नीचे तकका जान लेता है। ९वें, १०वें, ११वें, १२वें स्वर्गके देवोंका जघन्य अवधिज्ञान तृतीय पृथ्वीके नीचे तक है और उत्कृष्ट अवधिज्ञान चौथी पृथ्वीके नीचे तक है। १३वें, १४वें, १५वें, १६वें स्वर्गके देवोंका जघन्य अवधिज्ञान चौथे नरकके नीचे तक है और उत्कृष्ट अवधिज्ञान ५वीं पृथ्वीके नीचे तक है। सीताजीका जीव १६वें स्वर्गमें प्रतीन्द्र हुआ, जो कि अब भी १६वें स्वर्गका प्रतीन्द्र है। वह लक्ष्मण और रावणके जीवसे मिलनेके लिए नरकमें गया था और वहाँ उन दोनों आत्माओंको समझाया। लक्ष्मण और रावण ये दोनों जीव नरकमें थे। वहाँ सीताके जीवने सम्बोधा। ये दोनों भव्य जीव हैं, वहाँसे निकलकर तीर्थकर होंगे, और रावण जब तीर्थकर होगा तो उनकी सभाका मुख्य गणधर सीताका जीव होगा। तो चूँकि अवधिज्ञान जब इतना विस्तृत है १६वें स्वर्गका कि वह ५वें नरक तककी बात जान सकता है, फिर तो ये तीसरे, चौथे नरकमें ही गए हुए थे। इस प्रकार कल्पोंमें रहने वाले देवोंके अवधिज्ञान वहाँ होता है।

कल्पोत्तर वैमानिक देवोंके अर्थात् ग्रैवेयक, अनुदिश व अनुत्तर विमानवासी देवोंके जघन्य व उत्कृष्ट अवधिज्ञानकी सीमा अब कल्पोत्तर जो देव हैं उनके वर्णनमें सर्वप्रथम नवग्रैवेयक वाले देवोंका वर्णन करते हैं। स्वर्गोंके ऊपर ६ पटल हैं, इन पटलोंको ग्रैवेयक कहते हैं और उन पटलोंमें ग्रैवेयकवासी अहमिन्द्र देव होते हैं। यह स्थान लोकरचनामें पुरुषाकारकी ग्रीवा जैसा स्थान है और ६ पटल हैं, अतः उन्हें नवग्रैवेयक कहते हैं। एक-एक पटलमें बीचमें इन्द्रक विमान है और सब दिशाओंमें व विदिशाओंमें एक-एक विमान है। उन विमानोंमें रहने वाले देव ग्रैवेयकवासी कहलाते हैं। चूँकि यह स्थान पुरुषाकार लोकमें ग्रीवाके स्थान पर पड़ता है, इसलिए इसे ग्रैवेयक कहते हैं। ग्रीवा, कंठ ये एकार्थवाचक शब्द हैं। जो लोग बैकुण्ठ मानते हैं, ठीक बैकुण्ठकी स्थिति और ग्रैवेयककी स्थिति करीब तुल्य है। बैकुण्ठ वाले भी यह मानते हैं कि तपश्चरण करके जीव बैकुण्ठमें पहुँचता है और वहाँ आनंद भोगता है, निर्दोष है, कषायरहित है। फिर कुछ कल्प काल बाद उसको जन्म लेना पड़ता है। तो ग्रैवेयकवासी देवोंकी भी ऐसी स्थिति है कि साधु मुनि निर्ग्रन्थ होकर तपश्चरण करके ही ग्रैवेयकमें उत्पन्न हुआ जाता है। निर्ग्रन्थ साधुके अतिरिक्त वहाँ किसीकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। और उनकी स्थिति अधिकसे अधिक ३१ सागर प्रमाण है, जो लोगोंकी समझसे बाहर है कि कितने समय तक वे वहाँ रहते हैं? इसमें अनगिनते वर्ष लग जाते हैं। ग्रैवेयकवासी देव अनेक सम्यग्दृष्टि भी होते हैं और अनेक मिथ्यादृष्टि भी होते हैं। सभी शुक्ल लेश्या वाले हैं, पवित्र भाव वाले हैं। उनके चित्तमें अशान्ति आकुलता नहीं है, कामवासना भी नहीं है, उनके देवियाँ भी नहीं होतीं, किन्तु अपनी आयु पूर्ण करके उन सबको जन्म लेना पड़ता है। तो इन नवग्रैवेयक देवोंका जघन्य अवधिज्ञान तो ५वीं पृथ्वीके नीचे तक है और उत्कृष्ट अवधिज्ञान छठी पृथ्वीके नीचे तक है। ग्रैवेयकके ऊपर ६ अनुदिशकी रचना है। इनका पटल एक ही रहता है। उस एक पटलके बीचमें इन्द्रक विमान चार

दिशाओंमें चार विमान व विदिशाओंमें भी चार विमान हैं, इस तरह कुल ६ विमान हैं और ६ विमानोंकी संख्याके आधार पर इन्हें ६ अनुदिश कहा जाता है। तो इन ६ अनुदिशवासी देवोंके उत्कृष्ट अवधिज्ञान लोकनाली पर्यन्त अर्थात् नीचे तो ७वें नरकके नीचे तक और ऊपर भी लोकनालीके अन्त तक इनका अवधिज्ञान है। और इस प्रकार अनुदिशके ऊपर रहने वाले ५ अनुत्तर विमानवर्ती देवोंका अवधिज्ञान है। अनुदिशके ऊपर एक पटल है, जिसके बीचमें सर्वार्थसिद्धि और पूर्व आदिक दिशामें विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नामके विमान हैं। उनमें रहने वाले देव बहुत शान्त और सदा तत्त्वचर्चा करने वाले होते हैं। इनका भी अवधिज्ञान लोकनाली पर्यन्त है। इस अनुत्तर स्थानके ऊपर एक पृथ्वी है, जिसका नाम है सिद्धशिला। इस सिद्धशिला पर सिद्धभगवान नहीं रहते हैं, सिद्धभगवान तो उससे ऊपर रहते हैं, मगर इस पृथ्वी और सिद्धशिलाके बीचमें कुछ निवासस्थान भी नहीं है। इस कारण इसका नाम सिद्धशिला रखा गया। वैमानिक देवोंका यह अवधिज्ञान सबसे नीचे कितना है, क्योंकि उत्कृष्टता नीचेकी ओर अवधिज्ञानकी ज्यादा रहती है। अब ऊपर कितना है? तो सौधर्म आदिक स्वर्गोंमें रहने वाले जीवोंका तथा ग्रैवेयक अनुदिश व अनुत्तर विमानवासी देवोंका ऊपरकी ओर अवधिज्ञान कितना? वे अपने विमानके ऊपर तकका ही अवधिज्ञान रखते हैं और तिर्यक् रूपमें असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन तक अवधिमें उनका ज्ञान जानता है। इस प्रकार भवप्रत्यय अवधिज्ञान देवोंके कहाँ-कहाँ तक होता है, इसका वर्णन हुआ।

नारकियोंके अवधिज्ञानकी सीमा अब थोड़ासा नरकमें रहने वाले जीवोंके अवधिज्ञानका वर्णन सुनो। नीचेकी ओर इनका अवधिज्ञान कितना है, रत्नप्रभा नामक पहली पृथ्वीमें एक योजन तक अवधिज्ञान है अर्थात् ४ कोश प्रमाण तक उनका अवधिज्ञान है, याने इतने नीचे तककी बात वे जानते हैं। दूसरी पृथ्वीमें याने नरकमें रहने वाले नारकियोंका अवधिज्ञान साढ़े तीन कोश तकका होता है याने साढ़े तीन कोश तकके क्षेत्रमें होनेवाली घटनाओं और वस्तुओंका ज्ञान होता है। तीसरे नरकमें रहने वालोंका अवधिज्ञान तीन कोश तककी घटना जानना है। चौथे नरकमें निवास करनेवाले नारकियोंका अवधिज्ञान ढाई कोश तककी बात जानता है। ५वें नरकमें निवास करनेवाले नारकियोंका अवधिज्ञान दो कोश तककी बात जानता है और छठे नरकमें रहने वाले नारकियोंका अवधिज्ञान एक कोश तककी घटनाको जानता है। इनके भी नीचे-नीचे अवधिज्ञान ऊपरकी अपेक्षामें विशेष रहता है और सभी पृथ्वियोंमें सभी नारकियोंका अवधिज्ञान ऊपरसे उतने ही क्षेत्र तक है जितना कि उनका आवास स्थान है और दिशाओंकी ओर असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन तक ज्ञान रहता है। इनके अवधिज्ञान तिर्यक् रूपमें विशेष पाया जाता है। इस तरह भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव और नारकियोंके होता है। इस सूत्रका वर्णन समाप्त हुआ। अब यह जिज्ञासा स्वयमेव होगी कि भवप्रत्यय अवधिज्ञान तो देव और नारकियोंके होता है, तो क्षयोपशमहेतुक अवधिज्ञान किन जीवोंके होता है, इसका उत्तर अगले सूत्रमें किया गया है।

क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥ २२ ॥

क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञानकी निष्पन्नता क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान शेष जीवोंके होता है। यहाँ शेषसे मतलब है ऊपर कहे गए देव नारकियोंको छोड़कर बाकी जो मनुष्य तिर्यच बचे हैं उनका याने मनुष्यगति और तिर्यच गतिमें जिन जीवोंको अवधिज्ञान होता है वह क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान होता है। इस क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञानके ६ प्रकार हैं, जिनका वर्णन आगे किया जायगा। अभी क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञानका व्युत्पत्तिपूर्वक अर्थ सुनना है। क्षयोपशम नाममें तीन शब्द पड़े हैं क्षय, उपशम, और निमित्त, याने आवरण कर्मके क्षय और उपशमसे होने वाले ज्ञानको क्षयोपशमनिमित्तक कहते हैं। सो इससे शब्द जरूर दो दिए गए हैं क्षय और उपशम, पर लेना है तीन शब्द क्षय, उदय और उपशम याने अवधिज्ञानावरणके ही स्पर्धकोंका उपशम भी हो, उदयाभावरूप क्षय भी हो, उदय भी हो, ऐसी स्थितिमें अवधिज्ञान होता है। क्षयसे मतलब समस्त रूपसे क्षयका नहीं है, क्योंकि चार ज्ञानावरणोंका क्षय तब ही होता है जब केवलज्ञानावरणका क्षय होनेको होता है। इससे पहले इन चार ज्ञानावरणोंका भी क्षय नहीं है, किन्तु यहाँ क्षयका नाम है उदयाभावी क्षय याने उदय हो और एक समय ही पहले वह अन्य रूप परिणामे, किसी भी प्रकारका फल न मिल सके वह उदयाभावी क्षय है। अथवा उसे इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि उदयके होनेपर क्षय हो याने अवधिज्ञानावरणके देशघाती स्पर्धकोंका यदि उदय हो, उसके होते संते सर्वघाती स्पर्धकोंका उदयाभावरूप क्षय हो, उसे कहते हैं यहाँ क्षय और उपशम वह कहलाता है कि सर्वघाती स्पर्धकोंका जो कि उदयमें नहीं आ रहे उनकी सद्अवस्थारूप उपशम हो याने वह सत्तामें पड़ा रहे, उदयमें न आ सके, ऐसी स्थितिको कहते हैं उपशम। तो ऐसे क्षय और उपशम जिसका निमित्त है, हेतु है उसे कहते हैं क्षयोपशमनिमित्तक। ऐसा अवधिज्ञान शेषके अर्थात् मनुष्य और तिर्यचोंके ही होता है। यहाँ शेषके बताया, इससे यह अर्थ लेना कि एक इन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तक सभी तिर्यचोंके अवधिज्ञान होता है और सभी मनुष्योंके होता है, यह अर्थ यहाँ न लेना, क्योंकि असंज्ञी जीवोंमें तो अवधिज्ञानकी सामर्थ्य ही नहीं है और संज्ञी जीवोंमें भी सबके अवधिज्ञान नहीं होता, किन्तु जिन जीवोंके शान्ति, समता, अनाकुलता कुछ विशेष हो और सम्यग्दर्शन आदिक परिणामोंका निमित्त मिलनेपर उन शान्त और क्षीणकर्म वाले जीवोंके अवधिज्ञानकी उपलब्धि होती है।

सभी अवधिज्ञानोंकी अवधिज्ञानावरण क्षयोपशम हेतुकता होनेपर भी इस सूत्रके पृथक् कथनका इस सूत्रमें 'शेषाणां' ऐसा जो कहा है उसका अर्थ निवारणात्मक है अर्थात् देव और नारकियोंके तो बता ही दिया था। उनको छोड़कर बाकी जीवोंमें होता है। सो बाकी जीव मनुष्य और तीर्यच गतिके जीव हैं। उनमें जो योग्य हैं, जिनके अवधिज्ञानावरणका क्षयोपशम है उन जीवोंके अवधिज्ञान होता है। यहाँ एक आशंका और हो सकती है कि अवधिज्ञान तो सभीके अवधिज्ञानावरणोंके क्षयोपशमसे होता है। देव हो, नारकी हो, तिर्यच हो, मनुष्य हो, अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमके बिना

किसीको भी अवधिज्ञान नहीं हो सकता। फिर क्षयोपशमनिमित्तक है ऐसा कहना व्यर्थ है। इस आशंकाका उत्तर यह है कि जब कभी स्वयं सिद्ध बात होती है और उसे भी कहा जाये तो उसका नियम वाला अर्थ बन जाता है। जैसे पानी तो सभी मनुष्य पीते हैं। कोई ऐसा नहीं है जो पानी न पीता हो, फिर भी किसीके विषयमें यदि यह कहा जाये कि वह तो पानी लेता है तो इसका अर्थ यह बनेगा कि वह पानी ही लेता है और कुछ नहीं लेता। तो इस तरह जब सभी अवधिज्ञान क्षयोपशमनिमित्तक होते हैं और फिर भी कहा जाये कि क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान मनुष्य तिर्यचोंके होता है तो उसका नियम बन जाता है। याने मनुष्य और तिर्यचोंके क्षयोपशमके निमित्त ही अवधिज्ञान होता है, दूसरा नहीं होता याने भव प्रत्यय नहीं होता। जैसे किसी सज्जनके बारेमें कहें कि यह तो पानी लेता है तो उसका यही अर्थ बनता है कि यह पानी ही लेता है, अन्नादिक नहीं ले रहा। तो ऐसे ही यहाँ यह नियम बनेगा कि शेष जीवोंके क्षयोपशमका निमित्तक ही अवधिज्ञान होता है, भवप्रत्ययक अवधिज्ञान नहीं होता।

अष्टविध अवधिज्ञानोंका विवरण यह क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान ६ प्रकारका है (१) अनुगामी, (२) अननुगामी, (३) वर्द्धमान, (४) हीयमान, (५) अवस्थित और (६) अनवस्थित। यदि इनमें दो प्रकार और मिला दिए जायें कि कोई होता है प्रतिपाती और कोई होता है अप्रतिपाती। तो अवधिज्ञानके ८ प्रकार हो जाते हैं। इसका अर्थ क्या है सो सुनो कोई अवधिज्ञान अनुगामी होता है तो उसका अर्थ है अनु मायने पीछे, गामी मायने चलने वाला याने किसी जीवको अवधिज्ञान हुआ, फिर वह जीव उस क्षेत्रसे विहार कर जाये और दूसरी जगह पहुंच जाये तो वहाँ भी अवधिज्ञान रहे तो वह कहलायेगा क्षेत्रअनुगामी अवधिज्ञान। किसी जीवको किसी भवमें अवधिज्ञान है, जैसे मनुष्यभवमें अवधिज्ञान है और मरकर देवगतिमें जाय और उनका अवधिज्ञान बराबर साथ जाकर देव गतिमें हो तो उसका नाम है भवानुगामी अवधिज्ञान, और किसी जीवको दोनों तरहका सामर्थ्य हो कि एक क्षेत्रमें दूसरे क्षेत्रसे जाये तब भी अवधिज्ञान साथ रहे और एक भवसे दूसरे भवमें जाये तब भी अवधिज्ञान साथ रहे, उसे कहते हैं उभयानुगामी। इसी प्रकार अननुगामी भी तीन तरहके होते हैं। जैसे किसी पुरुषको अवधिज्ञान हुआ, जिस क्षेत्रमें हुआ, उस क्षेत्रमें विहार कर अन्य क्षेत्रमें पहुंच जाये वहाँ अवधिज्ञान न रहे, मिट जाये तो उसे कहते हैं क्षेत्रानुगामी अवधिज्ञान। इसी प्रकार एक भवसे दूसरे भवमें जाये याने मरण हो जाये तो अगले भवमें अवधिज्ञान न जाये, ऐसे अवधिज्ञानको कहते हैं भवाननुगामी अवधिज्ञान। और जिसमें ये दोनों ही सामर्थ्य न हों, एक क्षेत्रसे अन्य क्षेत्रमें जो वहाँ भी साथ न जाये अवधिज्ञान और एक भवसे दूसरे भवमें वहाँ न जाये तो उसे कहते हैं उभयानुगामी अवधिज्ञान। वर्द्धमान अवधिज्ञान उसका नाम है कि जिस प्रमाणमें अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है उस प्रमाणसे चढ़ता हुआ ही रहे उसे कहते हैं वर्द्धमान अवधिज्ञान।

जैसे जंगलमें बाँसोंकी रगड़से अग्नि उत्पन्न हो और वह पत्तोंमें लग जाये तो जैसे वह अग्नि बढ़ती हुई चली जाती है ऐसे ही सम्यग्दर्शन आदिक गुणोंके सन्निधानसे जिस प्रमाणमें अवधिज्ञान

उत्पन्न हुआ है, उस प्रमाणसे बढ़ता ही चला जाये, जितना कि उसका उत्कृष्ट विकास है याने असंख्यात लोकपर्यन्तकी जान सके उतना तक अवधिज्ञान बढ़ता जाये तो ऐसे बढ़नहार अवधिज्ञानको वर्द्धमान अवधिज्ञान कहते हैं। चौथा अवधिज्ञान है हीयमान अवधिज्ञान। जो गुण आत्माने प्राप्त किया है सम्यग्दर्शन आदिक उनकी हानि हो, संक्लेश परिणाम ही वृद्धि हो, ऐसा योग बन जाये तो उस समय जिस परिमाणमें सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ था उससे घटता हुआ ही रहे, कहाँ तक घट सकता फिर यह? अंगुलके असंख्यातवें भाग तक। देव और नारकियोंके अवधिज्ञानका क्षेत्र कमसे कम भी बताया गया था तो एक कोशसे कम किसीका न था। मगर मनुष्य तिर्यचोंमें कमसे कम अवधिज्ञान जगे तो अंगुलके असंख्यातवें भाग क्षेत्र तक ही जाने, इतना मामूली अवधिज्ञान हो और उत्कृष्ट अवधिज्ञान हो मनुष्योंके तो असंख्यात लोकको, सारे लोकको जान ले। इतना ऊँचा अवधिज्ञान देव और नारकियोंमें नहीं होता और इतना नीचा अवधिज्ञान भी देव और नारकियोंमें नहीं होता। तो जो क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान है वह यदि हीयमान भेद वाला है तो वह घटता-घटता जघन्य तक हो सकता है। ५वें अवधिज्ञानका नाम है अवस्थित अवधिज्ञान। सम्यग्दर्शन आदिक गुणोंके अवस्थित होनेसे एक रूप परिणामोंके विशुद्ध रहनेसे जिस परिमाणमें अवधिज्ञान उत्पन्न होता है उसी परिमाणमें ही अवधिज्ञान रहे, उससे न बढ़े, न घटे उसे कहते हैं अवस्थित अवधिज्ञान। यह अवस्थित अवधिज्ञान कब तक अवस्थित रहता है? ज्यादासे ज्यादा जीवन तक रहता है या केवलज्ञान उत्पन्न होने तक रहता है याने केवलज्ञान उत्पन्न हो तब तो रहता ही नहीं, मगर उससे पहले तक चलता है। छठे अवधिज्ञानका नाम है अनवस्थित अवधिज्ञान। सम्यग्दर्शन आदिक गुणोंकी वृद्धि और हानि होनेके योगसे बढ़े और घटे याने जिस प्रमाणमें अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ था उससे बढ़े, कभी घटे, इस तरहकी बातें चलें तो उसे कहते हैं अनवस्थित अवधिज्ञान। जैसे कि जब जलमें हिलोरें उठती हैं तो कभी बढ़तीं, कभी घटतीं, इस तरहसे चलती रहती हैं इसी प्रकार यह अनवस्थित अवधिज्ञान होता है। इस प्रकार क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञानके ८ भेद कहे गए हैं। अब दूसरी प्रकारसे अवधिज्ञान भेद कहे जाते हैं।

त्रिविध अवधिज्ञानका विवरण अवधिज्ञान तीन प्रकारका होता है देशावधि, परमावधि और सर्वावधि। देशावधि शब्दका अर्थ है एकदेश अवधिज्ञान, अल्प अवधिज्ञान। परमावधि का अर्थ है परम अवधि, अधिक विशेष अवधिज्ञान, और सर्वावधिका, अर्थ है सर्वांश पूर्ण जितना अवधिज्ञान हो सकता है वह समस्त अवधिज्ञान। इन तीन प्रकारके अवधिज्ञानोंसे देशावधि तीन प्रकारका होता है जघन्य, उत्कृष्ट और अजघन्योत्कृष्ट याने मध्यम। जघन्यका अर्थ है बहुत थोड़ी जगहका जान सकना। थोड़े समयको जान सकना, यह तो है जघन्य और बहुत दूर तककी जान सकना और बहुत अधिक काल तककी जान सकना यह कहलाता है उत्कृष्ट और इन दोनोंके बीच जितने भी और स्थान हैं वे सब कहलाते हैं मध्यम। इसी प्रकार परमावधि भी तीन प्रकारसे है जघन्य, उत्कृष्ट और अजघन्योत्कृष्ट याने न जघन्य, न उत्कृष्ट, किन्तु बीचका। सर्वावधि ज्ञान एक किस्मका है। उसमें

भेद नहीं है, क्योंकि वह तो एक संपूर्ण अवधिज्ञान है। तो अब देशावधिज्ञानका जघन्य क्षेत्रकाल आदिक क्या है और उत्कृष्ट क्या है, यह समझनेसे पहले थोड़ा यह मनमें अवधारण करना कि परमावधि और सर्वाधिक तो संयमी मुनियोंके होता है और उन मुनियोंके जिनके कि केवलज्ञान होगा और देशावधिज्ञान मुनियों और श्रावकोंके सम्यग्दृष्टिके होता है और यदि कुत्सित अवधिज्ञान है तो मिथ्यादृष्टियोंके होता है।

देशावधिज्ञानकी जघन्य व उत्कृष्ट सीमा देशावधिज्ञान कमसे कम कितने क्षेत्र तककी जाने? वह है उत्सेधांगुलका असंख्यातवां भाग याने एक अंगुलकी जितनी लम्बाई है उसकी जो एक रेखा सी है उसके अनगिनतवाँ भाग दूर तककी जाने। कुछ समझमें ऐसा आ रहा होगा कि यह तो कुछ भी क्षेत्र नहीं है, यह तो शरीरके बाहर एक रोम बराबर जगह भी नहीं है कि जितना कि एक रोम मोटा हो उतने क्षेत्रकी बात जाने वह देशावधि है। इसका क्या रहस्य है? तो भाई रहस्य क्या? यह तो ज्ञानकी एक कला है। इतना भी न जान सकते थे जिसके अवधिज्ञानावरणका उदय है, तो क्षयोपशम तो आया। इतना जाना तो सही इन्द्रिय और मनकी सहायताके बिना। यह जीव तो इतना परतंत्र है कि मन और इन्द्रियके साधन बिना यहाँ जान ही नहीं पाता। यद्यपि जानने वाला आत्मा ही है लेकिन मन और इन्द्रियके साधन बिना यह जान नहीं पा रहा। तो कमसे कम एक परतंत्रता तो मिटी, केवल आत्मीय शक्तिसे तो जाना। तो देशावधिका जघन्य क्षेत्र है उत्सेधांगुलका असंख्यातवां भाग और देशवधिका। उत्कृष्ट क्षेत्र कितना है? अधिकसे अधिक जाने तो कहाँ तक जाने? तो वह है सारा लोक। जितना ३४३ घनराजू प्रमाण लोक है उस सबको जान जाता है और मध्यम इन दोनोंके बीच संख्याते विकल्प हैं। संख्याते प्रकार हैं वह है अजघन्योत्कृष्ट। और अवधिज्ञान बाहरकी चीजको जानता है तो उसी बाहरी क्षेत्रमें कमसे कम क्षेत्र समाना और अधिकसे अधिक क्षेत्र समझना तो वह है कम अंगुलका असंख्यातवां भाग और अधिकसे अधिक सर्व लोक।

परमावधि व सर्वावधिज्ञानकी सीमा परमावधिका जघन्य क्षेत्र क्या है? उसका क्षेत्र है देशावधि क्षेत्रसे एक प्रदेश अधिक याने देशावधिज्ञान उत्कृष्टसे जितने दूर तकके क्षेत्रकी बात जानता है उससे एक प्रदेश अधिक परमावधिका जघन्य क्षेत्र है याने जितना लोक है उससे एक प्रदेश अधिक। यहाँ शंकाकी जा सकती कि लोक तो जितना है सो है ही और अवधिज्ञानका विषयरूपी पदार्थ। उस सबको जान लिया उत्कृष्ट देशावधिज्ञान ने। अब उसके बाहर तो कुछ है ही नहीं, पर परमावधिका जघन्य क्षेत्र इस तरह कैसे कहा जा रहा है? भाई, उत्तर यह है कि नहीं है। बाहररूपी पदार्थ सो न जानेगा, लेकिन क्षयोपशम इतना है कि इसके आगेकी जान सकता है। परमावधिका उत्कृष्ट क्षेत्र है असंख्यात लोक प्रमाण। अब लोक तो एक है लेकिन शक्ति इतनी है कि ऐसे असंख्यात लोक हों तो वे भी जाननेमें आयेगे परमावधिज्ञानीके ज्ञान में, और मध्यम है इसके बीचका क्षेत्र। अब सर्वावधि ज्ञानका जघन्य और उत्कृष्ट क्षेत्र सुनो। उत्कृष्ट परमावधिकक्षेत्रसे बाहर असंख्यात क्षेत्र तक जानता है सर्वावधिज्ञान। यह सर्वावधिका क्षेत्र है, न वहाँ जघन्य है, न उत्कृष्ट है। यहाँ संक्षेपमें यह जानना

कि देशावधिका जघन्य क्षेत्र है अंगुलका असंख्यातवां हिस्सा और उत्कृष्ट है सारा लोक और सारे लोकसे एक प्रदेश अधिक यह है परमावधिका जघन्य क्षेत्र और उत्कृष्ट है। असंख्यात लोक और इससे बाहर असंख्यात क्षेत्र, और भी मिलकर सर्वावधिका क्षेत्र होता है।

देशावधि, परमावधि व सर्वावधिज्ञानमें अष्टविध विशेषताओं से विशेषताका दिग्दर्शन अब देशावधि, परमावधि और सर्वावधि ज्ञानमें परस्पर भिन्नता समझनेके लिए आठ प्रकारके भेदोंका सहारा लें। जैसे कि ऊपर कहा गया था कि अवधिज्ञान ६ प्रकारका होता है (१) अनुगामी, (२) अननुगामी, (३) वर्द्धमान, (४) हीयमान, (५) अवस्थित और (६) अनवस्थित। इन ६ के अतिरिक्त दो भेद और लगायें प्रतिपाती और अप्रतिपाती। इसका अर्थ है कि जो अवधिज्ञान छूट जायेगा वह तो है प्रतिपाती और जो अवधिज्ञान छूट न सके, किन्तु उसके बाद केवलज्ञान हो ऐसे अवधिज्ञानको कहते हैं अप्रतिपाती। तो यों अवधिज्ञानकी भिन्नता समझनेके लिए ८ प्रकारके भेद जानना चाहिए। इनमेंसे देशावधिज्ञानमें तो ये ८ ही भेद होते हैं। देशावधिज्ञान अनुगामी होता है याने अन्य क्षेत्रमें जाये, अन्य भावमें जाये और अननुगामी भी होता याने न भी जाये। वर्द्धमान होता। जिस तादादमें उत्पन्न हुआ उससे बढ़ता ही रहे और हीयमान भी होता याने यह घटता रहे। अवस्थित होता। ज्यों का त्यों रहे और अनवस्थित होता याने कभी घटे, कभी बढ़े। देशावधिज्ञानकी बात कही जा रहा है। वह प्रतिपाती भी हो सकता, अप्रतिपाती भी हो सकता। याने छूट जाये और न भी छूटे, याने केवलज्ञान होकर ही छूटे। ऐसे आठों ही प्रकार देशावधिज्ञानमें सम्भव हैं। परमावधि ज्ञानमें हीयमान और प्रतिपाती ये दो भेद नहीं होते, बाकी ६ भेद होते हैं।

देखो परमावधि ज्ञान नियमसे केवलज्ञान होने तक रहता है, केवलज्ञान हुए बाद ही निवृत्त होता है याने ज्ञानकी पर्याय अवधिज्ञानरूप चल रही है। चल रही है उसके अनन्तर ही केवलज्ञानकी पर्याय होती है तब अवधिज्ञान रहता ही नहीं। उस अवधिज्ञानका व्यय और केवलज्ञानका उत्पाद वे एक ही समयमें हैं। तो जो अवधिज्ञान केवलज्ञान उत्पन्न करके ही निवृत्त होगा उसे प्रतिपाती कैसे कहा जायगा? यह एक स्थिति उत्कृष्ट है कि केवलज्ञान होनेपर छूटा तो छूट ही गया। केवलज्ञानमें तो और विषय बढ़ गया। अब यह ज्ञान तीनलोक अलोककी बात जानने लगा। इसी प्रकार परमावधि ज्ञानमें हीयमान प्रकार नहीं होता याने परमावधि घटता जाये यह स्थिति नहीं आती। जिस अवधिज्ञानके बाद केवलज्ञान होगा तो उस ज्ञानमें तो अतिशय ही बढ़ता जायगा। घटनेका कोई सवाल नहीं। सर्वावधि ज्ञानमें चार ही भेद होते हैं (१) अवस्थित, (२) अनुगामी (३) अननुगामी (४) अप्रतिपाती। इसका कारण यह है कि सर्वावधिज्ञान एक ही प्रकारका होता है। उसका जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट क्षेत्र नहीं होता। जो है सो ही होता है। तो जब जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट नहीं है तो बढ़ने-घटनेकी बात कैसे हो सकती? बढ़ने-घटनेका तो अर्थ यह ही है कि कभी आगेके क्षेत्रकी जानने लगे, कभी कम जानने लगे और वह तो एक ही प्रकारका है तो वर्द्धमान हीयमान भेद नहीं, अनुगामी, अननुगामी होते हैं, इसका भावार्थ क्या है? अनुगामीका तो अर्थ यह है कि जहाँ-जहाँ जाये वहाँ-वहाँ

सर्वावधि भी रहे। मिटता नहीं, क्योंकि अनुगामीमें तीनों प्रकार होते हैं। इनका मरण तो होता नहीं, निर्वाण होगा तो अगले भवमें सर्वावधिज्ञान जाता कि नहीं। इसका प्रश्न ही नहीं उठता, पर एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें वे मुनिराज जायें तो अवधिज्ञान भी साथ ही जाता, मिटता नहीं है। वह कहलाया अनुगामी अवधिज्ञान और अनुगामीपना कैसे होता? मायने साथ न जाये यह तो हल्की बात जंचेगी? उत्तर सुनो केवलज्ञान जब हो गया तब आगे नहीं जाता, इस दृष्टिसे सर्वावधिको अनुगामी जानना है। ऐसी ही दृष्टि परमावधिमें लेना। अप्रतिपाती तो है ही याने गिरेगा नहीं, बढ़ता ही चला जायेगा। केवलज्ञान होगा तो अवधिज्ञान स्वयं न रहेगा और साथ ही ऐसा एक सर्वावधिज्ञान अवस्थित ही होता है।

देशावधिज्ञानका जघन्य क्षेत्रसीमाके साथ कालसीमाका परिचय अच्छा ऐसे सामान्य वर्णनके बाद अब इसकी विशेषताओंको कालके साथ सुनो। तीन प्रकारके अवधिज्ञान कहे गए देशावधि, परमावधि और सर्वावधि। देशावधिका जघन्य क्षेत्र है उत्सेधांगुलका असंख्यातवां भाग। तो जो इतना ही मात्र जान पा रहा है अवधिज्ञानके द्वारा अंगुलका असंख्यातवां भाग तो उसका समय कितना याने कितने समय पहले बादकी बात जानेगा? तो वह समय है आवलीका असंख्यातवां भाग। आवली बहुत छोटा समय कहलाता। आंखकी पलक जितनी देरमें गिरती है उतनी देरमें अनगिनतें आवली समय गुजर जाते हैं। उसमेंसे एक आवलीका असंख्यातवां भाग जघन्य काल है। यह बात सुनकर भी क्षेत्रकी तरह एक अचरज वाली बात होगी कि यह भी कोई काल है? याने जघन्य देशावधि ज्ञानी आवलीके असंख्यात भाग आगे-पीछेकी बात जानता है। अरे इतने समयमें तो एक-डेढ़ शब्द भी नहीं बोला जा सकता। इतने छोटे कालकी बात जानता है। इसका आश्चर्य न करना चाहिए।

कारण यह है कि वह अब इन्द्रिय और मनका आलम्बन तजकर एक जाननेकी स्थितिमें तो आया। चाहे कितना ही जाना हो, केवल आत्मीय शक्तिसे तो जाना, प्रत्यक्ष तो जाना, स्पष्ट तो जाना। अच्छा तो जो देशावधिज्ञान सर्व जघन्य रूपसे उत्सेधांगुलके असंख्यातवें भाग जगहकी जाने और आवलीके असंख्यातवें भाग जगहकी जाने और आवलीके असंख्यातवें भाग कालकी जाने तो वह द्रव्य जितना जानेगा। तो द्रव्य भी उस सर्व जघन्य देशावधिका जो विषय क्षेत्र है अंगुलका असंख्यातवां भाग उतने ही प्रदेश प्रमाण द्रव्यको जानेगा। इतना स्थूल पदार्थ जानेगा जिसमें कि अनन्त प्रदेश होते हैं और भाव कितना जानेगा? तो भावके मायने हैं जिस पदार्थको जाना जा रहा है उस पदार्थमें पाये जाने वाले अनन्त वर्णादिक जो विकल्प हैं याने उन पर्यायोंकी जो हीनाधिकता आदिक अविभागप्रतिच्छेद वाली पर्याय है वह भाव कहलाती है, उसे जाने, यह तो हुआ सर्वजघन्य देशावधिज्ञानका वर्णन।

देशावधिज्ञानकी अजघन्योत्कृष्ट व उत्कृष्ट क्षेत्रसीमाके साथ कालसीमाका परिचय अब इसके बाद बड़े ही बड़े ज्ञान होंगे। तो एक जीव जो जघन्य देशावधिज्ञानमें है वह इससे आगे और बढ़े तो एक प्रदेश आगे न बढ़ेगा, वह विशेष आगे बढ़ेगा। हाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा ये सब बातें मिल जायेंगी

कि कितने जीव सर्व जघन्य अवधिज्ञानके क्षेत्रसे एक प्रदेश अधिककी बात जानेगा, पर वही एक जीव अवधिज्ञानमें बढ़ेगा तो पहली बारमें एक ही साथ अनेक डिग्रियोंकी बुद्धि पर पायेगा, एक ही नहीं कर सकता। जैसे मेंढक उछलता है तो उससे कहे कोई कि तू बस एक सूत आगेको उछल तो वह उछल तो न पायेगा। तो जैसे मेंढक उछलता है तो उन उछालोंमें जघन्य उछाल कितनी है? कमसे कम कितनी दूर उछलेगा? उसका उत्तर कोई देगा तो एक सूतका तो न देगा। आधा इंचका भी देगा। उछाल तो उसकी कमसे कमकी भी अधिक है। जितना भी कमसे कम, सो वह हुई मेंढकके उछलनेकी पहली वृद्धि। इस तरहसे बढ़ते-बढ़ते यह अवधिज्ञान सर्व लोकपर्यन्त बढ़ जाता है। अब थोड़ा संक्षेपमें इसके एक मोटे-मोटे बढ़ावकी बात सुनो। जो बढ़-बढ़कर एक अंगुल दूरकी बात जानने लगा, ऐसा जिसके अवधिज्ञान हो याने आत्मा जितने क्षेत्रसे बाहर एक अंगुल प्रमाण मानो जान लिया तो ऐसा जानने वाला जीव कालकी अपेक्षा कितने समय पहले और बादकी बात जानेगा? तो उसका काल होगा कुछ कम एक आवली काल। यह भी एक अभी तक हैरानीका उत्तर जैसा है। एक आवली होती ही कितनी है? एक पलक गिरनेमें असंख्यात आवली होती है। फिर भी कितना ही हो, जाना तो कुछ विशेष ही। अब इसके आगे बढ़-बढ़कर जो जीव ७-८-९ अंगुल तककी बात जानने लगा तो उसका समय होगा एक आवली प्रमाण। कोई जीव एक हाथ दूर तककी बात जानने लगा अवधिज्ञानके द्वारा तो उसका काल होगा आवलीपृथक्त्व उसे ९ तकके अंदर आवलियाँ। जो जीव एक गव्युति प्रमाण क्षेत्र अर्थात् दो कोश तककी बात अवधिज्ञानसे जाने तो ऐसा जीव कितने पीछे तककी बात जानेगा? कुछ अधिक उच्छ्वासके काल बराबर। जो अवधिज्ञान एक योजन (चार कोश) तककी बात जान लेगा तो वह कितने समय आगे-पीछे जानेगा? तो वह है अन्तर्मुहूर्त। कुछ मिनट पहले और पीछेकी बात जान लेगा। जो जीव २५ योजन प्रमाण क्षेत्र तकका जाननेका सामर्थ्य रखता है अवधिज्ञानसे तो वह कितना आगे-पीछे कालकी बात जानेगा? तो उसके काल है कुछ कम एक दिन का। मायने एक दिन पहले व बादकी बात अवधिज्ञानसे जान ले। देखिये यहाँ बहुत वृद्धि होनेके बाद इतना समय आ पाया। यहाँ एक बात और समझनेकी है कि समयका तो प्रमाण कम बढ़ता है और क्षेत्रका प्रमाण ज्यादा-ज्यादा बढ़ रहा है। जो जीव भारतक्षेत्र तककी बात जान सकता है अवधिज्ञान से, जिसके अवधिज्ञानका क्षेत्र इतना बड़ा हो गया है उसके कालका कितना समय है? कितना आगे-पीछेकी बात जान ले? तो उसका काल है आधा महीना (१५ दिन) और जो जीव जम्बूद्वीप तकके क्षेत्रकी बात अवधिज्ञानसे जानता है उसका काल कितना है? मायने कितना आगे-पीछे तककी बात जान सकता है? तो उसका काल है कुछ अधिक एक महीना। और जो जीव मनुष्यलोककी बात जान सकता है तो वह कितना आगे-पीछे तककी बात जानेगा? तो उसका काल है एक वर्ष और जो रुचकगिरि पर्यन्त जानता है उसका काल है ७-८ वर्ष। और जो संख्यात द्वीप समुद्रकी बात जानता है उसका काल है संख्याते वर्ष और जो असंख्यात द्वीप समुद्रके क्षेत्रकी बात अवधिज्ञानसे जानता है उसका काल है असंख्यात वर्ष का। इनके आगे-पीछे भूत-भविष्यकी बात जान लेगा। इस तरह यह सामान्यतया याने तिर्यच और मनुष्योंका जघन्य और उत्कृष्ट ज्ञान है।

सिर्फ तिर्यचोंके अवधिज्ञानकी जघन्य और उत्कृष्ट सीमाका परिचय सिर्फ तिर्यचोंको उत्कृष्ट देशावधिज्ञान कितना याने गाय, भैंस, घोड़ा आदिक जो संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव हैं उनके भी अवधिज्ञान हो जाता है और उनमें भी सम्यग्दृष्टि जीव पाये जाते हैं, तो उनके अवधिज्ञानका क्षेत्र कितना है उत्कृष्ट? तो वह है असंख्यात द्वीप समुद्र, और असंख्यात वर्ष काल और तैजस शरीर प्रमाण द्रव्यको जानता है। तो देशावधिकी बातमें एक यह भी अन्तर जानना कि कमसे कम देशावधिज्ञान मनुष्य न होगा, तिर्यचके नहीं। और ऊँचेसे ऊँचा देशावधिज्ञान मनुष्यमें होगा, तिर्यचोंके नहीं। और तिर्यचोंके केवल देशावधिज्ञान ही हो सकता है, परमावधि और सर्वावधि ज्ञान नहीं होते। ये तो मनुष्योंके ही होते हैं। अब मनुष्योंका उत्कृष्ट देशावधिज्ञान असंख्याते द्वीप समुद्र तकको जानता है और असंख्याते कालके भूत-भविष्यको जानता है, और द्रयादिक इतना छोटा जानते जितना कि कार्माण द्रव्य होता है। इस तरह देशावधिका वर्णन समाप्त हुआ।

परमावधिज्ञानकी जघन्य व उत्कृष्ट सीमा और विशेषता अब परमावधिका वर्णन करेंगे। जो उत्कृष्ट देशावधिज्ञानका क्षेत्र और काल है, जैसा कि बताया गया है कि असंख्याते द्वीप समुद्र तो क्षेत्र है और असंख्याते वर्ष काल है और द्रव्य है कार्माण द्रव्य बराबर अवधिज्ञानका विषय। तो इस देशावधिज्ञानसे कुछ अधिक क्षेत्र काल परमावधिका जघन्यरूपसे विषय है और उत्कृष्ट परमावधिका क्षेत्र है असंख्याते लोकप्रमाण अर्थात् असंख्याते लोक है याने कितने असंख्यात? जितनी कि अग्निकायिक जीवोंकी संख्या है, इतने लोकप्रमाण उत्कृष्ट परमावधिका क्षेत्र है। इसमें अवधिज्ञानके सामर्थ्यकी महिमा बतायी गई है। और मध्यम उसके बीचका क्षेत्रकाल है तो यह तीनों प्रकारका ही परमावधि ज्ञान उत्कृष्ट संयमी जीवोंके होता है, साधारण संयमीके भी नहीं। और यह परमावधि वर्द्धमान होता है, बढ़ता हुआ ही रहता है, पर हीयमान नहीं होता। अप्रतिपाती याने केवलज्ञान इसके बाद ही होगा। केवलज्ञानसे पहले छूटता नहीं और इस परमावधिको अननुगामी भी कह सकते हैं, क्योंकि परलोकमें यह जाता नहीं याने परलोक होता ही नहीं, निर्वाण होता है परमावधि ज्ञानी जीवोंका केवलज्ञान होकर, इस तरह वह परमावधिज्ञान हीयमान नहीं और प्रतिपाती नहीं।

सर्वावधिज्ञानकी एकरूपता व विशेषता अब सर्वावधि ज्ञानका वर्णन करते हैं। सर्वावधिज्ञानका क्षेत्र, काल, द्रव्य, भाव सभी प्रकारका विषय एक रूप है, क्योंकि यहाँ जघन्य और उत्कृष्ट अवस्था नहीं होती। असंख्यात तो असंख्याते प्रकारकी होती है। तो उत्कृष्ट परमावधि क्षेत्रमें असंख्याते लोकका गुणा किया जाये तो उतना क्षेत्र सर्वावधि ज्ञानका है। इसमें सामर्थ्य बतायी गई है, लोक तो जितना है सो ही है। यह अवधिज्ञान न वर्द्धमान है, न हीयमान, न अनवस्थित है, क्योंकि सर्वावधि ज्ञानका विषय एक ही है। अगर सर्वावधि नहीं है तो उसका अर्थ है कि उस अवधिज्ञानकी जातिमें विकासकी घटा-बढ़ी होती है और उसके भेद बन जाते हैं। सर्वावधि प्रतिपाती नहीं है और जब तक उस संयम अवस्थामें वह मुनि विराजमान है तब तक वह अवस्थित है, फिर तो केवलज्ञान हुआ और में अवधिज्ञान ही नहीं रहता, सिर्फ केवलज्ञान ही रहता है और भवान्तरमें यह जाता नहीं याने भव

होता ही नहीं, इसलिए अननुगामी भी कह सकते और अन्य क्षेत्रमें जाये तो वहाँ भी जाये अवधिज्ञान, इस तरह अनुगामी कह सकते।

अवधिज्ञानकी अभ्युदितता अवधिज्ञान अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमके अनुसार होता है। और अवधिज्ञानावरणका क्षयोपशम विशुद्ध परिणाम करके होता है, और उन विशुद्ध परिणामोंमें महिमावान विशुद्ध परिणाम है सहज ज्ञानस्वभावकी दृष्टि रखना और इस ही अंतस्तत्त्वकी आराधना करना। इसीसे ही संयमकी वृद्धि है। इस ही अंतस्तत्त्वकी उपासनामें ऋद्धि सिद्धि समृद्धि है। आत्माके कल्याणका मूल आत्मस्वभावकी दृष्टि है। अन्य तो संसारमें जितनी भी विषयसामग्री पड़ी हैं, चेतन हों, अचेतन हों, वे केवल मोहके निमित्त बनकर इसकी बरबादीके तो कारण हैं, पर इसके उत्थानके कारण नहीं। आत्माका उत्थान आत्मस्वभावकी उपासनासे ही सम्भव है। क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान इंद्रिय और मनसे नहीं होता, फिर भी आत्मप्रदेश और सूक्ष्म स्कंध हृदयगत, अंतर्गत, वृषभ, स्वस्तिक, नंदावर्त आदिक रूपसे एक संस्थान सा होता है और उसके माध्यमसे उपयोग बनता है, फिर भी यह पराधीन नहीं है अवधिज्ञान। यह तो प्रत्यक्ष ही है, क्योंकि जहाँ इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा होती है वहाँ ही पराधीनता है, परोक्षरूपता है, क्योंकि पर इन्द्रियको ही कहते हैं और इन्द्रियसे परे है मन और मनसे परे है बुद्धि, और बुद्धिसे परे है यह अवधिज्ञान। इस तरह यह क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान उत्कृष्ट रूपसे संयमी साधु मुनिजनोंके होता है। जो अंतस्तत्त्वकी आराधना करते हैं उनके कर्मपटल दूर होते हैं और यहाँ स्वयं ही ऐसी ऋद्धियाँ उन्हें प्राप्त होती हैं। अब अवधिज्ञानका वर्णन करनेके बाद मनःपर्ययज्ञानका नम्बर है। उस ही के विषयमें सूत्र कह रहे हैं।

ऋजुविपुलमतीमयःपर्यय ॥ २३ ॥

द्विविध मनःपर्ययका वर्णन मनःपर्ययज्ञान ऋजुमति और विपुलमति दो प्रकारका होता है। मनःपर्ययज्ञानका अर्थ है कि दूसरेके मनमें तिष्ठते हुए विकल्पगत अर्थका ज्ञान कर लेना सो मनःपर्ययज्ञान है। बहुतसे लोग संकेत से, मनोविज्ञानसे मनकी बातका परिचय देते हैं, पर वह मनःपर्ययज्ञान नहीं है, क्योंकि उनका ज्ञान स्पष्ट नहीं है, पराधीन है, और मनःपर्ययज्ञान इन्द्रिय मनसे परे है और इसमें दूसरेके मनोगत भाव, विकल्पगत अर्थका स्पष्ट प्रत्यक्ष होता है। यों मनःपर्ययज्ञान प्रत्यक्षज्ञान है। इसके दो भेद हैं ऋजुमति मनःपर्यय और विपुलमति मनःपर्यय। ऋजुमतिमें दो शब्द हैं ऋजु और मति। ऋजुका अर्थ है सरल और मतिका अर्थ है ज्ञान याने सरल मन, वचन, कायकृत अर्थका ज्ञान होना मनःपर्ययज्ञान है। और दूसरा ज्ञान है विपुलमति मनःपर्यय। विपुल कहते हैं विशालको, कुटिलको भी, उसमें भी सोचा हो, सोचेगा कुछ उसे भी जान ले। आधा ही सोच पाया उसे भी जान ले पूरा, ऐसा विपुल ज्ञान होता है विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी के। जिसका ज्ञान विपुल है उसे विपुलमति कहते हैं। ऋजुमति विपुलमति ऐसे दो शब्द थे, पर एक ही मति शब्द होनेसे अर्थका ज्ञान हो जाता है, इसलिए सूत्रमें दो मति शब्द नहीं दिए गए अथवा यहाँ समास है ऋजु और विपुल

ऐसा द्वन्द्व समास होकर बना ऋजुविपुले, जिसका रूप है ऋज्वी च विपुला च, ऋजुविपुले यह हुआ द्वन्द्व समास। अब इसके बाद बहुव्रीहि समास होगा। ऋजुविपुले मति ययोस्तौ ऋजुविपुलमती। याने सरल और कुटिल, कठिन, सभी प्रकारके रूपसे ज्ञान जिनको हो सो ऋजुविपुलमति वाले कहलाते हैं याने मनःपर्ययज्ञान दो प्रकारका है (१) ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान और (२) विपुलमति मनःपर्ययज्ञान।

मनःपर्ययज्ञानकी स्वतंत्रता व स्पष्टरूपता यहाँ कोई आशंका करता है कि जब मनका सम्बंध हो गया याने दूसरेके मनमें जो विकल्प हो, जो पदार्थ चिन्तवन किया हो उसे जानता है मनःपर्ययज्ञान। तो मनका आलम्बन होनेसे तो यह उत्पन्न हुआ। तो इस तरह उत्पन्न होने वाले मनःपर्ययको मतिज्ञान कहना चाहिए। अलगसे मनःपर्यय क्यों कहा? यह आशंका यों ठीक नहीं कि यहाँ मनका आलम्बन नहीं है, किन्तु मनमें तिष्ठी हुई बातको जाना है। जैसे कोई आकाशमें चन्द्रमा को देखता है तो क्या आकाशके द्वारा देखता है? देखा तो आंखसे ही, पर आकाशमें देखा, इसी तरहसे जाना तो अपने ही ज्ञानसे, आत्मशक्तिसे, पर दूसरेके मनमें ठहरे हुए पदार्थको जाना। इस तरह कहीं आलम्बन न बन जायेगा। और जब दूसरेका मन केवल उस विकल्पका आधारमात्र है, साधनमात्र है तो उसको रहा आया, मगर मनःपर्ययज्ञान वाला मनके आलम्बनसे नहीं जानता, वह तो आत्मीय शक्तिसे निरपेक्ष ही जान लेता है। इस कारण मनःपर्ययज्ञान मतिज्ञान नहीं कहला सकता, किन्तु स्पष्ट प्रत्यक्षज्ञान है।

मनःपर्ययज्ञानका अनुमानज्ञानमें अन्तर्भाव किये जानेकी अशक्यता अब यहाँ शंकाकार एक और आशंका रख रहा है कि जब मनःपर्ययज्ञानमें मनका प्रतिबोध है अर्थात् अन्य पुरुषके मनमें रहने वाले अर्थको जानता है तो मनःपर्ययज्ञान अनुमानज्ञान कहलायगा। अनुमानज्ञानमें भी तो यही होता है कि धूमके प्रतिबंध होनेसे धूमसे सम्पृक्त गुणका अनुमान बनता है और ऐसा ही यहाँ हो रहा है कि अन्य पुरुषके मनके प्रतिषेधसे उसके मनमें लगे हुए विकल्पित हुए अर्थोंको मनःपर्ययज्ञान जानता है। तो यों यह अनुमानज्ञान क्यों न बन जायगा? इस शंकाका उत्तर देते हैं कि अनुमानज्ञानमें और प्रत्यक्षज्ञानमें लक्षणका विरोध है। मनःपर्ययज्ञानमें प्रत्यक्षका लक्षण ही घटित होता है। प्रत्यक्षका लक्षण बताया गया है कि जो इन्द्रिय और मनसे निरपेक्ष हो, जिसमें व्यभिचार न आये, स्पष्ट ग्रहण हो उसे कहते हैं प्रत्यक्ष। तो इस लक्षणके साथ मनःपर्ययज्ञानका अविरोध है, किन्तु अनुमानज्ञानमें यह लक्षण घटित नहीं होता। अतः मनःपर्ययज्ञानको अनुमानज्ञान नहीं कह सकते। अथवा ऐसा समझना कि अनुमानज्ञान तो उपदेशपूर्वक होता है और चक्षु आदिक इन्द्रियके सम्बन्धसे होता है अर्थात् जब पहले सुना कि यह अग्नि है, यह धूम है, यह जानकर समझाते ही हैं जैसे बच्चोंको, अथवा बच्चे स्वयं दूसरेके शब्द सुनकर समझ ही जाते हैं कि यह अग्नि है, यह धूम है, तो पहले तो इस तरह अग्नि और धूमका परिचय बना, फिर पीछे धूम देखा। अब चक्षुइन्द्रियसे उपयोग हुआ, उससे फिर अग्निमें अनुमान बनता है। तो इसमें तो प्रत्यक्षका लक्षण नहीं घटित होता। और मनःपर्यय ऐसा ही है नहीं। न वह उपदेशकी अपेक्षा रखता है और न चक्षु आदिक इन्द्रियके सम्बन्धसे

होता है, किन्तु इन्द्रिय और मनकी सहायताके बिना केवल आत्मीय शक्तिसे दूसरेके मनोगत पदार्थोंको जानता है। इस कारण मनःपर्ययज्ञान अनुमान ज्ञानमें सम्मिलित नहीं हो सकता। वह तो स्पष्ट स्वतन्त्र प्रत्यक्षज्ञान है।

ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानका विवरण अब ऋजुमति मनःपर्ययके भेदोंके विवरण द्वारा परिचय करें। ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान तीन प्रकारसे होता है, एक तो दूसरेके सरल मनसे निष्पन्न अर्थको जानने वाला, दूसरा सरल वचनसे कृत अर्थको जानने वाला, तीसरा सरल कायसे कृत अर्थको जानने वाला। इसका भाव यह है कि किसीने मनसे व्यक्त अर्थको संचिंतन किया, फिर कालान्तरमें उस ही का फिर विचार किया और फिर वह विस्मृत होकर उसका चिन्तवन करनेमें समर्थ न रहा, ऐसे पदार्थोंको ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान किसीके द्वारा पूछे जाने पर या न पूछे जाने पर भी जान लेता है कि यह पदार्थ है व इस प्रकारसे इसने इस पदार्थोंका चिन्तवन किया है। इसी प्रकार कोई पुरुषने धर्मादिक भाव वाले वचनसे खूब भली प्रकार बोला अब बोलनेके बाद कालान्तरमें उसे भूल गया। अब वह चिन्तन करना चाहता है क्या कहा? चिन्तवन कर नहीं सकता। ऐसे उस विकल्पको, पदार्थको ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान स्पष्ट जान लेता है कि इसने यह बोला था। इसी प्रकार किसी पुरुषने सरल चेष्टा द्वारा कोई क्रियाकी और क्रियाकार कालान्तरमें मानो अब उसे सोच रहा है, पर विस्मृत होनेके कारण चिन्तन नहीं कर सकता, उसे भी मनःपर्ययज्ञान जान लेता है कि इसने यह किया था। तो चूंकि वह पुरुष मनमें चिन्तन करना चाहता, नहीं सोच पाता। उसके मनमें क्या विकल्प है, उससे सम्बंधित पदार्थोंको यह ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान वाला जानता है। मनःपर्यय शब्दमें सीधा अर्थ यह आया कि मनकी परिणतिको जानता है याने मनको ही जानता है। दूसरेके मनको जान लेना, स्पष्ट प्रत्यक्ष विवादाहित जान लेना सो मनःपर्ययज्ञान है। यह ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान भूतकालमें कब तकके चिन्तन किए हुएको जानता है याने दूसरा पुरुष कितने समय पहले चिंतन कर रहा था, उसे जानता है। तो उसका समय जघन्यसे तो है २-३ भव और उत्कर्षसे है ७-८ भव और कहाँ तककी बात जानता है? उस सूत्रकी मर्यादा है जघन्यसे तो प्रायः ७-८ कोश अर्थात् ३ कोश से लेकर ६ कोश भीतर तक, इससे बाहर नहीं जान सकता और उत्कर्षसे जानेगा। तो पृथक्त्वयोजन अर्थात् ३ से लेकर ६ योजनके बीच तक। यह ऋजुमनःपर्ययज्ञान संयमी जीवोंके होता है, सम्यग्दृष्टियोंके होता है, जिन्होंने सहज अंतस्तत्त्वकी उपासनाकी और उससे अनेक कर्मकलंक दूर हुए, पवित्रता बढ़ी। ऐसे पुरुषके ज्ञान किस-किस प्रकारसे विकसित होते हैं वह सब कला इस प्रसंगमें समझना है।

विपुलमति मनःपर्ययज्ञानका विवरण अब विपुलमति मनःपर्ययज्ञानकी बात सुनो। विपुलमति मनःपर्ययज्ञान ६ प्रकारका होता है सरल मनके विषयको जानना, सरल वचनके विषयको जानना, सरल कायके विषयको जानना, कुटिल मनके विषयको जानना, कुटिल वचनके विषयको जानना, कुटिल कायके विषयको जानना। सरल मनकी बात तो ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानमें जिस तरह बताया सो है और कुटिलकी बात ऐसी है कि किसी मनुष्यका कुटिल मन है, मायाचारी वाला मन है, ऐसे

कृटिल वचन और शरीरकी बात है। उससे चिन्तन किये हुये, बोले हुये, चेष्टा किए हुए पदार्थका कालान्तरमें वह चिन्तन न कर सके अथवा भविष्यमें उसका कभी चिन्तन करेगा अथवा चिन्तन नहीं किया, चिन्तनका विचार भी नहीं उठ रहा, फिर भी उसके पूर्व चिन्तित पदार्थको जान लेना सो यह विपुलमति मनःपर्ययज्ञान है। विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी जीव तो और दूसरोंका चिन्ता, जीवन, मरण, सुख-दुःख, लाभ-अलाभ, सरल मन से, कठिन मनसे चिन्तन किए हुए, न चिन्तन किए हुए सभी प्रकारके पदार्थोंको जानता है। विपुलमति मनःपर्ययज्ञान कितने भूत और कितने भविष्य तककी बात जान सकता है, तो जघन्यसे तो ७-८ भव और उत्कृष्टसे असंख्याते भव तककी बात जान सकता है। क्षेत्रकी अपेक्षासे कहाँ तकके मनके चिन्तन वालेको जान सकता है? तो जघन्यसे तो पृथक्त्व योजन अर्थात् तीन योजनसे ६ योजन तक और उत्कर्षसे मानुषोत्तर पर्वतके भीतर। इस सम्बन्धमें दो मंतव्य मिलते हैं, एक तो ऐसा कि मानुषोत्तर पर्वतके भीतर तक जानेगा, बाहर नहीं, एक ऐसा कि मानुषोत्तर पर्वत तकका क्षेत्र है ४५ लाख योजन। तो कोई जीव अगर मानुषोत्तर पर्वतके पास निकट ही बैठा है, भीतर संयमी मुनि और वह विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी है तो उत्कर्षसे जानेगा तो ४५ लाख योजन तककी जान लेगा। अब वह बाहरका भी क्षेत्र बन जायेगा। तो एक मंतव्यसे तो नाप वाला क्षेत्र है और एक मंतव्यसे अवधि वाला क्षेत्र है कि मानुषोत्तर पर्वत तक जानेगा, उसके बाहर नहीं। उसके भीतर ४५ लाख योजन जान लेगा। अब ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानका विवरण करके यह कहते हैं कि इन दोनोंमें परस्परमें अन्तर है क्या?

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥ २४ ॥

ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान व विपुलमति मनःपर्ययज्ञानमें विशेषताका वर्णन विशुद्धि और अप्रतिपातसे ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान और विपुलमति मनःपर्ययज्ञानमें विशेषता है, परस्पर अन्तर है। विशुद्धि नाम है आत्माके निर्मल भावका। विशुद्ध्य वरण कर्मका क्षय होने पर अर्थात् चारित्रमोहनीय प्रकृतियोंका यथासम्भव क्षयोपशम होनेपर आत्मामें जो प्रसन्नता होती है, निर्मलता जगती है उसको विशुद्धि कहते हैं, और अप्रतिपात कहते हैं प्रतिपात न होना याने गिरना नहीं, केवलज्ञान ही उत्पन्न होवे, उससे पहले मनःपर्ययज्ञान छूटे नहीं, इसे कहते हैं अप्रतिपात। तो इन दोनों दृष्टिसे ऋजुमतिमनःपर्यय और विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानमें अन्तर है। कैसा अंतर है कि ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानीके जितनी विशुद्धि होती है उससे अधिक विशुद्धि विपुलमति मनःपर्ययज्ञानीके है। उसके ज्ञान विशेष है और ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान तो प्रतिपाती भी हो सकता याने केवलज्ञान होनेसे पहले छूट जाये, न केवलज्ञान हो अथवा उस भवमें केवलज्ञान ही न हो और विपुलमति मनःपर्ययज्ञान अप्रतिपाती होता है अर्थात् केवलज्ञान ही होगा, उससे पहले छूटेगा नहीं, केवलज्ञान होते समय तो केवलज्ञान ही रहता, कोई भी ज्ञान नहीं रहता। मनःपर्ययज्ञानकी इस द्विविधामें कारण यह है कि जो जीव कषायोंका उपशमन करके ऋद्धि प्राप्त करता है, मनःपर्ययज्ञान प्राप्त करता है। उसके जब चारित्रमोहका उदय आता तो

वह संयमरूपी शिखरसे गिर जाता है तब मनःपर्ययज्ञान छूट जाता। संयमसे गिर गया तो संयमसे प्रतिपात हो गया, केवलज्ञान न हो सका। यह स्थिति बन सकती है ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी की। और जो कषायोंको क्षीण करके चढ़ा उसके गिरनेका कोई कारण ही नहीं रहता। क्षपकश्रेणीसे चढ़ रहा, चारित्रमोहनीयका क्षय करता हुआ चढ़ रहा, क्षीण कषाय गुणस्थानमें आ गया। विपुलमति मनःपर्ययज्ञान उसके है तो छूटेगा नहीं। १२वें गुणस्थानके अंतमें केवलज्ञान हुआ और समय मनःपर्ययज्ञान नहीं रहेगा। यह है उसके अप्रतिपातकी कथा।

नाम द्वारा दोनों मनःपर्ययज्ञानोंमें अन्तर सिद्ध होने पर भी सूत्र द्वारा कथन करनेके रहस्य यहाँ एक आशंका हो सकती कि पूर्व सूत्रमें जो शब्द दिया है ऋजुमति, विपुलमति, उससे ही अन्तर सिद्ध हो जाता कि ऋजुमतिसे विपुलमति मनःपर्ययज्ञान विशेष होता है, फिर यह सूत्र बनानेकी क्या आवश्यकता थी? तो उत्तर इसका यह है कि पूर्व सूत्रसे जो अन्तर जाना जाता है वह काफी परिचय नहीं है और उतने मात्रसे संतोष नहीं होता। वह तो एक साधारणसा परिचय है। और इस सूत्रसे अनेक तथ्य प्रकट हो रहे। विशेष अन्तरकी जानकारीके लिए इस सूत्रकी रचना हुई है। अन्तर यह है कि विशुद्धिसे जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूपसे ऋजुमतिमें विशुद्धि है उससे अधिक विशुद्धि है विपुलमति मनःपर्ययज्ञान में। इसके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चारकी अपेक्षा ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानीसे विशेष विशुद्धि है। जैसे सर्वावधिज्ञानमें क्या जाना था? कार्माण द्रव्यका अनन्तवां भाग। इतना सूक्ष्म विषय था। अब सर्वावधिके द्वारा जाने गए विषयके भी अनन्त भाग किए जायें वह है मनःपर्ययज्ञानका विषय, क्योंकि अनन्तके अनन्त भेद होते हैं। हाँ, उत्कृष्टान्तके अनन्त भेद नहीं हैं। अनन्त तो ६ प्रकारके होते हैं। सर्वावधिज्ञानके द्वारा जाने गए विषयका भी अनन्तवां भाग जानता है। अब ऋजुमतिने जितना जाना उससे और दूरका विप्रकृष्टका और सूक्ष्म अनन्तवां भाग जानता है। तो यों विपुलमति मनःपर्ययज्ञानकी विशुद्धि ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानीसे बहुत अधिक होती है। इसी तरह अप्रतिपाती है विपुलमति मनःपर्यय और ऋजुमति मनःपर्यय प्रतिपाती है, क्योंकि ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानके जो स्वामी मुनिराज हैं उनके कषायके उदयके अनुसार चारित्रकी हीनता हो जाती है। इस तरह ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान और विपुलमति मनःपर्ययज्ञानमें अन्तर समझना चाहिए। अब अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानके मध्य क्या अन्तर है, इस विषयका वर्णन करते हैं।

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः ॥ २५ ॥

अवधिज्ञान व मनःपर्ययज्ञानमें परस्पर चतुर्विध अन्तरप्रदर्शनके प्रसंगमें विशुद्धिकृत अन्तरका ~~क~~ विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी और विषय इस चार अपेक्षाओंसे अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानमें अन्तर समझना चाहिए। विशुद्धि नाम है निर्मलताका। क्षेत्र नाम है जहाँ रहने वाले पदार्थोंको यह ज्ञान जानता है। स्वामी नाम है इस ज्ञानके प्रभुओंका और विषय मायने हैं ज्ञेय पदार्थ। कौन ज्ञान कितना विशुद्ध है, कितनी दूर तकका जानता है और उसके कितने स्वामी हैं और वह किस बातको जानता है, इन

चार बातोंका प्रकाश इन दोनों ज्ञानोंके बीच समझना। यहाँ शंकाकार कहता है कि समझ गए हम। विशुद्धि अवधिज्ञानमें ज्यादा है और मनःपर्ययज्ञानमें कम है, क्योंकि मनःपर्ययज्ञानका विषय तो छोटा है याने अवधिज्ञानका जितना विषय है उसका अनन्तवां भाग है और अवधिज्ञानका विषय बड़ा है, इस कारण विशुद्धि अवधिज्ञानमें विशेष हुई अपेक्षाकृत मनःपर्ययज्ञानके। इस आशंकाका समाधान करते हैं कि विशुद्धता तो मनःपर्ययमें विशेष है याने अवधिज्ञानकी अपेक्षा मनःपर्ययज्ञानकी विशुद्धि और निर्मलता अधिक है। क्योंकि एक तो यह बात समझनी चाहिए कि जो ज्ञान जितनी बारीक चीजको जान सके, महिमा तो उस ज्ञानकी है और जो ज्ञान एक मोटी चीजको जाने उसकी महिमा उससे कम है। तो अवधिज्ञान जितने द्रव्यको जानता है उसके भी अनन्तवें भागको मनःपर्ययज्ञान जानता है तो इसमें तो विशुद्धि विशेष समझनी चाहिए। आम बात भी है ऐसी, किसीको मोटी चीज दिखती है और किसीको बारीक चीज दिख जाती है तो दृष्टि किसकी विशुद्ध कहोगे? जिसको छोटी चीज दिखती, बारीक चीज दिखती उसकी विशुद्धि विशेष है। कोई बड़े अक्षरकी बातोंको देख सकता है, कोई बहुत छोटे अक्षरोंको बांच लेता है तो दृष्टि किसकी निर्मल कही जायगी? दृष्टि कही जायगी निर्मल छोटे अक्षर पढ़ लेने वाले की। तो अवधिज्ञानका अनन्तवां भाग मनःपर्ययज्ञानका विषय है द्रव्य, तो इससे तो महिमा ही जानी गई मनःपर्ययज्ञान की। दूसरी बात यह है कि मनःपर्ययज्ञान बहुत पर्यायोंको जानता है, बहुत प्रकारसे जानता है बनिस्वत अवधिज्ञान के। जैसे कोई पुरुष पढ़ता तो बहुत शास्त्र है, व्याख्यान करता है, मगर थोड़े-थोड़े रूपसे ही वर्णन कर सकता है, समस्त रूपसे शास्त्रगत अर्थको कह नहीं सकता। और दूसरा पुरुष ऐसा है कि एक शास्त्रको बहुत पूरे तौरसे व्याख्यान कर लेता है और उसके सब अर्थको कहनेमें समर्थ है। तो विशुद्ध ज्ञान किसका कहेंगे? चाहे एक ही शास्त्रका व्याख्यान करता है, मगर सूक्ष्मसे सूक्ष्म तत्त्वके रहस्यका वर्णन करता है तो कौन कहलायेगा विशुद्ध? अधिक पर्यायोंको अधिक अर्थोंको, अधिक नय और रहस्योंको जानने वाला कहलायेगा बड़ा, उसी प्रकार अवधिज्ञानके विषयके अनन्त भागको जो जानने वाला है मनःपर्यय उसे ज्यादा विशुद्ध कहा जायेगा, क्योंकि उस अनन्त भागको रूपादिक बहुत पर्यायोंसे उसको जानता है, इस कारण विशुद्धि मनःपर्ययज्ञानमें विशेष है, अवधिज्ञानमें मनःपर्ययज्ञानसे कम है।

अवधिज्ञान व मनःपर्ययज्ञानमें क्षेत्र विषय व स्वामीकी अपेक्षासे अन्तरका कथन क्षेत्रकी बात यह है कि अवधिज्ञान तो सारे लोकको जानता है, उसका क्षेत्र बड़ा है और मनःपर्ययज्ञान मनुष्य क्षेत्र प्रमाण जानता है और विषय अवधिज्ञानसे भी और बारीक अनन्तवां भाग मनःपर्ययज्ञानका विषय है। स्वामी मनःपर्ययज्ञानके कम है, अवधिज्ञानके ज्यादा है, इसका कारण यह है कि जिन मुनिराजोंके संयम गुण विशिष्ट होता है उनके ही मनःपर्ययज्ञान होता है। इस तरह बात समझनी चाहिए कि चारों गतियोंके जीवोंसे सिर्फ मनुष्योंमें ही मनःपर्ययज्ञान हो सकता है। देव, नारकी और तिर्यच मनःपर्ययज्ञान सम्भव ही नहीं, और मनुष्योंमें भी उत्पन्न होने वाले जीव सभी मनःपर्ययज्ञान प्राप्त नहीं हो सकते, किन्तु गर्भज मनुष्योंके ही मनःपर्ययज्ञान हो सकता है। सम्मूर्छनज मनुष्योंमें मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न

नहीं हो सकता। गर्भजमें भी जो कर्मभूमिके जीव हैं उनमें मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो सकता है, भोगभूमिके जीवों में नहीं। कर्मभूमिजोंमें भी जो पर्याप्तक हैं उनमें ही उत्पन्न हो सकते हैं, किन्तु जो अपर्याप्तक हैं याने निवृत्यपर्याप्तक हैं उनमें उत्पन्न नहीं होता। पर्याप्तकोंमें भी सबमें मनःपर्ययज्ञान नहीं होता, किन्तु सम्यग्दृष्टि हों उनमें ही उत्पन्न होता है। मिथ्यादृष्टि मनुष्योंके मनःपर्ययज्ञान सम्भव नहीं, सम्यग्दृष्टियोंमें भी सभी सम्यग्दृष्टियोंके नहीं होता, किन्तु संयमी सम्यग्दृष्टिमें होता है याने चतुर्थ और पंचम गुणस्थानमें भी मनःपर्ययज्ञान नहीं होता, संयमी जीवोंमें भी छठेसे १२वें गुणस्थान तकके जीवोंमें होता, सो भी उन मुनिराजोंके होता जिनका चारित्र बढता हुआ है, हीयमान चारित्र वालोंमें मनःपर्ययज्ञान नहीं होता। और उनमें भी सब मुनियोंमें नहीं होता, किन्तु ७ प्रकारकी ऋद्धियोंमें से कोई भी ऋद्धि प्राप्त हुई हो, ऐसे मुनियोंके ही सम्भव हो सकता है। सो ऋद्धि प्राप्त मुनिराजोंमें भी सबमें नहीं होता, किसी बिरलेमें होता है। इस तरह यह समझना कि जिनके विशिष्ट संयम पाया जाता हो उनके ही मनःपर्ययज्ञान होता है। अब समझिये कि मनःपर्ययज्ञानके स्वामी कितने से हैं संसारमें और अवधिज्ञानी चारों गतियोंके जीवोंमें उत्पन्न हो सकते, जो संज्ञी जीव हैं। तो इस तरह स्वामीके भेदसे भी अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानमें अन्तर पाया जाता है।

वर्णनमें क्रम प्राप्त केवलज्ञानका कथन न करके ज्ञानके विषयोंका वर्णन करनेका सयुक्तिक संकल्प अब इस समय केवलज्ञानका लक्षण कहना चाहिए, क्योंकि सब ज्ञानोंके विषयमें चर्चा चल चुकी है। तो नम्बर यद्यपि केवलज्ञानके वर्णनका आ रहा है तो भी चूँकि उसका वर्णन अंतिम अध्यायसे शुरू होगा सब विधियोंके बाद, संवर निर्जराका विवरण करनेके बाद जब मोक्षतत्त्वका वर्णन चलेगा, वहाँ केवलज्ञानका वर्णन चलेगा, इसलिए अन्तमें होता है। इस बातको लेकर आचार्य यहाँ केवलज्ञानके लक्षणको न कहकर इस समय ज्ञानके विषयोंकी बात बतायेंगे। तो सब ज्ञानोंमें प्रथम ज्ञान है मतिज्ञान और श्रुतज्ञान। उसके सम्बंधमें कहते हैं।

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥ २६ ॥

मतिज्ञान व श्रुतज्ञानके विषयका निबन्धन मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके विषयमें नियम है कि वह कुछ पर्यायों सहित सर्वद्रव्योंको जानता है याने कुछ पर्यायसहित समस्त द्रव्योंके विषयमें श्रुतज्ञानका नियन्त्रण है। यह सब मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके विषयका निबन्ध कहा जा रहा है। यह कैसे जाना? विषय शब्द जो इस सूत्रमें पड़ा ही नहीं है, तो उसकी पूर्व सूत्रसे अनुवृत्ति आती है। सो यद्यपि पूर्व क्षेत्रमें विषयेभ्यः, यों शब्द पंचमी विभक्ति वाला है, फिर भी प्रकरणवशसे उसका ग्रहण है और प्रकरणके अनुसार उसका षष्ठीमें प्रयोग है। ऐसा देखा भी जाता, बोला भी जाता।

जैसे कोई कहे कि देवदत्तका घर ऊँचा है, उसको बुला लावो। तो कोई कहेगा कि पहले वाक्यमें तो देवदत्तका कहा अब यहाँ उसको क्यों कहते? तो प्रकरणवश विभक्ति बदल जाती है। तो ऐसे ही यहाँ विषयमें षष्ठी विभक्ति लगाई गई है। तब सूत्रका अर्थ हुआ कि मतिश्रुतज्ञानका कुछ पर्यायों

सहित सर्व द्रव्यों विषयका नियम है। मतिश्रुतज्ञान सभी द्रव्योंके बारेमें जान लेता है। यह बात कहनेके लिए द्रव्येषुमें बहुवचनका प्रयोग किया गया है। ६ प्रकारके द्रव्य होते हैं जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। उन सबका परिचय मतिज्ञान और श्रुतज्ञान कर लेते हैं, लेकिन समस्त पर्यायोंका ग्रहण नहीं कर सकते। कारण यह है कि यह ज्ञान इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न होता है। सो जिस साधनकी जितनी योग्यता है उसके अनुसार ही परिचय हो पाता है। जैसे चक्षुइन्द्रिय से कोई पदार्थ देखा तो केवल रूप पर्यायको ही तो जाना जा सका। रस आदिक तो परिचयमें न आये। तो सर्वपर्यायोंका ग्रहण तो न हो सका। इसी तरह श्रुतज्ञानसे भी शब्द द्वारा होता है परिचय। तो शब्द तो संख्यात ही हैं और द्रव्यपर्याय असंख्यात हैं, अनन्त हैं याने मोटे स्कंधकी दृष्टिसे तो असंख्याते हैं और अणु-अणुकी दृष्टि अनन्त हैं। तो श्रुतज्ञान द्वारा भी सर्व पर्याय ज्ञानमें आ ही नहीं सकतीं। और मोटे रूपसे यह बात है कि भगवानके केवलज्ञानमें जितना झलका है, दिव्यध्वनिमें उतना प्रकट नहीं होता, दिव्यध्वनिमें जितना प्रकट होता है गणधर उतना नहीं गूँथ पाते, जितना गणधर गूँथ लेते हैं उतना लेखनमें नहीं आ पाता है। इस तरह श्रुतज्ञानके द्वारा भी सब कुछ नहीं जाना जा सकता। यों मतिज्ञान और श्रुतज्ञानका कुछ पर्यायों सहित सर्व द्रव्योंमें विषयका नियम है।

मतिज्ञान व श्रुतज्ञानमें अमूर्त द्रव्यको भी जान सकनेकी योग्यता अब शंकाकार कहता है कि धर्मास्तिकाय आदिक तो बिल्कुल अतीन्द्रिय विषय है, अमूर्त है, इन्द्रिय द्वारा गम्य है ही नहीं, तो उनमें तो मतिज्ञानका प्रवेश नहीं हो सकता और जब अतीन्द्रिय मतिज्ञान जान नहीं सकता तो फिर यह कहना कैसे ठीक है? मतिज्ञान सर्व द्रव्योंका विषय करता है।

इस शंकाका उत्तर यह है कि धर्म, अधर्म आदिक अमूर्त पदार्थोंका ज्ञान इन्द्रिय द्वारा तो नहीं होता, किन्तु मन द्वारा तो हो जाता है। मनका नाम नोइन्द्रिय है अर्थात् अन्तरंगकी इन्द्रिय, अन्तःकरण, ईषत्इन्द्रिय। सो नोइन्द्रियावरणका क्षयोपशमकी अपेक्षा रखकर होने वाला जो मानसिक ज्ञान है उसका तो व्यापार है कि अमूर्त पदार्थोंको जान ले और एक इस तरह भी समझ लेना चाहिए कि यदि उसमें न लगे मन अर्थात् मन धर्मास्तिकाय आदिक अमूर्त पदार्थोंको न जानता होता तो जैसे अवधिज्ञानका विषय बताया है कि रूपी पदार्थोंको ही अवधिज्ञान जानता है तो उसके साथ ही मनको भी जोड़ देते कि मन भी रूपी पदार्थोंको ही जानता है, पर चूंकि मन अमूर्त पदार्थोंके विषयको भी समझता है, इस कारण इस सूत्रमें बिल्कुल उपयुक्त कहा है कि मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके विषयका नियम है कि वह समस्त द्रव्योंको जान ले। हाँ, पर्याय सब नहीं जानी जा सकतीं। अब अवधिज्ञानके विषयका नियम बतलाते हैं।

रूपिष्ववधेः ॥ २७ ॥

अवधिज्ञानके विषयका निबन्धन अवधिज्ञानका रूपी पदार्थोंमें विषयका नियम है। रूपीका अर्थ है मूर्तिक, पौद्गलिक। यद्यपि रूप शब्दके अर्थ अनेक होते हैं। जैसे रूपका अर्थ वर्ण है यह तो

प्रसिद्ध ही है, जो चक्षुइन्द्रियसे जाना जाता है, पर रूपका अर्थ कहीं स्वभाव भी होता है। जैसे यह अनन्तरूप है मायने अनन्त स्वभाव वाला है। कहीं रूपका अर्थ स्वरूप होता है। फिर भी यहाँ जो प्रसंग है, प्रकरण है उसके अनुसार अर्थ है रूपी मायने वर्ण वाला। रूपी होता है पुद्गल। यदि रूपीका अर्थ स्वभाव किया जाये तो क्या हर्ज है? ऐसी जिज्ञासा करें तो उसका उत्तर है कि यदि रूपका अर्थस्वभाव कर दिया जाये तो स्वभाव तो सभी पदार्थोंमें होता है, फिर अवधिज्ञानका विषय अलगसे क्या कहा गया? इसलिए रूपीका अर्थ यहाँ स्वभाव नहीं, किन्तु रूपीका अर्थ पुद्गल है। यहाँ एक बात और समझनी चाहिए कि रूपीका अर्थ है रूपवान। और जहाँ ऐसा मातृपु प्रत्यय लगा हुआ है उसका अर्थ निकलता है बहुत वाला, याने बहुत रूप वाला, बहुत धन वाला धनवान, बहुत ज्ञान वाला ज्ञानवान, ऐसे ही बहुत रूप वाला सो रूपी अथवा रूपवान, क्या ऐसा अर्थ है?

तो उत्तर है कि इस तरहका अर्थ नहीं है, फिर क्या अर्थ होगा? यहाँ नित्य अर्थ है याने पुद्गल नित्य होता है, यह नित्य ही रूपसे सत् होता है। जैसे कहा गया कि क्षीरी वृक्ष याने दूधिया वृक्ष, तो अर्थ हुआ कि जो वृक्ष नित्य ही दूध वाला है, इसी तरह नित्य ही जो रूप वाला है वह ही तो पुद्गल है, ऐसे पुद्गल अवधिज्ञानके विषय होते हैं, सो रूपमुखेन होते हैं ऐसा अर्थ न लेना। रस आदिक रूपसे नहीं जाना जाता पुद्गल अवधिज्ञानके द्वारा यह अर्थ न लेना। कोई यों सोच ले कि रूपी कहा है तो केवल रूपका ही ज्ञान होता होगा। रस आदिक तो कहे ही नहीं, सो यह अर्थ न लेना, क्योंकि रूपी शब्द उपलक्षण है। तो रसादिकका उपलक्षणरूपसे ग्रहण है, इस कारणसे रूपके अविनाभावी जो रस आदिक हैं उनका भी ग्रहण करना चाहिए। और इस तरह अर्थ हुआ कि रूपी पदार्थोंका ज्ञान अवधिज्ञान करता है, सो रूपी पुद्गलके रसका गंधका, स्पर्शका, वर्णनका अवधिज्ञान परिचय करता है।

रूपी पदार्थोंमें भी असर्वपर्यायोंमें अवधिज्ञानके विषयका निबन्धन अब यहाँ कोई यह जिज्ञासा करता है कि अगर उपलक्षण लिया गया कि रूपी मायने रूप, रस आदिक तो यों ही उपलक्षणसे आगे बढ़-बढ़कर ऐसा अर्थ कर लीजिए कि सभी अनन्त पर्यायोंमें अवधिज्ञानका विषय नियम चलता है। चलो रूपी पदार्थके ही बारे में, किन्तु उसकी समस्त पर्यायोंको अवधिज्ञान जानता है, क्या ऐसा अर्थ लगा लिया जाय? उत्तर यह है कि यह अर्थ भी सही नहीं है। अवधिज्ञानकी म्याद हुआ करती है। कितना जाने, कितने भविष्यको जाने, कितनी पर्यायोंको जाने यह अवधि है और इस बातका निश्चय इस तरह भी कर लीजिए कि पूर्व सूत्रमें जो असर्वपर्यायीषु कहा गया है उसकी अनुवृत्ति यहाँ आ जायगी याने अवधेय असर्वपर्यायीषु रूपिषु, याने इस पर्यायसहित रूपी पदार्थोंमें अवधिज्ञानके विषयका नियम है और अनवृत्ति हुआ करती है। जैसे कोई कहे कि इसके लिए गाय दे दो और उसके लिए कम्बल, तो उसके लिए कम्बल इतनेका क्या अर्थ हुआ? उसके लिए कम्बल दे दो। तो पहले वाक्यमें 'दे दो' शब्द था उसकी अनुवृत्ति हो जाती है।

जैसे कहते हैं कि आप भोजन कीजिए और आप भी। तो कीजिए की अनुवृत्ति दूसरे वाक्यमें भी लगती है, ऐसे ही पूर्व सूत्रमें कहे गए असर्वपर्यायीषु इस शब्दकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आयेगी।

और, इसमें यह अर्थ मिट गया कि अवधिज्ञान समस्त रूपी पदार्थोंको नहीं जानता, सर्व पर्यायोंको नहीं जानता, किन्तु कुछ पर्यायों सहित पुद्गलको जानता है। यहाँ यह भी एक विशेष बात समझनी कि रूपीका विषय करता है अवधिज्ञान, सो रूपका जहाँ किसी प्रकार कुछ भी सम्बन्ध हो उसे भी जानता है और इस विधिसे औदयिक, औपशमिक, क्षयोपशमिक इन तीन प्रकारकी जिन पर्यायोंमें भी अवधिज्ञानकी गति बन जाती है, पर क्षायिक भावमें नहीं और पारिणामिक भावमें भी नहीं, क्योंकि रूपी द्रव्यके सम्बन्धसे ये क्षायिक और पारिणामिक भाव नहीं होते। अतः ये अवधिज्ञानके विषय नहीं हैं और इस प्रकार धमस्तिकाय अमूर्त पदार्थ भी अवधिज्ञानके विषय नहीं हैं, क्योंकि ये न रूपी हैं न रूपीका इनमें सम्बन्ध है। इस तरह अवधिज्ञानके विषयका निबन्धन कहा गया। अब मनःपर्ययज्ञानका विषय निबन्धन बतलाते हैं।

तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ॥ २८ ॥

मनःपर्ययज्ञानके विषयका प्रतिपादन मनःपर्ययज्ञानका विषय अवधिज्ञानके अनन्तवें भाग हैं, अवधिज्ञानमें सर्वोत्कृष्ट ज्ञान सर्वावधिज्ञान है और सर्वावधिज्ञानका जो विषय है वह भी रूपी द्रव्य याने कार्माण द्रव्यका अनन्तवाँ भाग, उसका भी अनन्तवाँ भाग करके एक भागमें मनःपर्ययज्ञानकी गति बनती है अर्थात् मनःपर्ययज्ञान सर्वावधिज्ञानके विषयके अनन्तवें भागको जानता है। इस सम्बन्धमें मनःपर्ययज्ञानके विवेचनके समय बहुत स्पष्ट विवेचन आया है कि मनःपर्ययज्ञानका कितना सूक्ष्म विषय है? जब कार्माण द्रव्यका अनन्तवाँ भाग अवधिज्ञानका उत्कृष्ट विषय है। तो अब उस अनन्तवें भागका और क्या अनन्तवाँ भाग है? उससे बहुत सूक्ष्म पर्यायोंका समाधान मिलता है। तो ऐसे बहुत सूक्ष्म द्रव्योंको और वे भी दूसरेके द्वारा चिन्तित किए गए अर्थको यह मनःपर्ययज्ञान जानता है। अवधिज्ञान तो एकदम सीधे ही द्रव्यको जानता है। है द्रव्य, जान लिया, पर मनःपर्ययज्ञान इस ढंगसे जानता है कि किसीने कुछ चिन्तन किया तो उस चिन्तनमें आये हुए विकल्पको, अर्थको जानता तो यह अवधिज्ञानसे भी बहुत सूक्ष्म विषय है। ऐसा एक ज्ञानविकास जो मनःपर्ययज्ञान केवलज्ञानसे पहले दर्जेमें यह उपलब्धि महामुनिको प्राप्त होती है निज सहजज्ञायकस्वरूप अन्तस्तत्त्वकी उपासना से। यह जीव संसारमें रुला रहा है तो निज अन्तस्तत्त्वकी सुध न रखने से। जिसको अन्तस्तत्त्वकी सुध हुई है वह पुरुष वह भव्य जीव कैसे-कैसे ज्ञानविकासको प्राप्त होता है, कैसे ऋद्धियाँ स्वयं सहज होती हैं। उन सबका इससे अनुमान हो जाता है। अब मनःपर्ययज्ञानके बाद केवलज्ञानके विषयका नियम कहते हैं।

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥ २९ ॥

केवलज्ञानके विषयका निबन्धन और द्रव्य शब्दके निष्पत्त्यर्थमें अनेक रहस्योंका दर्शन केवलज्ञानका समस्त द्रव्यपर्यायोंमें विषयका नियम है अर्थात् केवलज्ञान समस्त द्रव्य, समस्त पर्यायोंको एक साथ

स्पष्ट जानता है। द्रव्यका अर्थ क्या है? तो द्रव्य शब्दकी जो व्युत्पत्ति है वह यह है कि आत्मनः पर्यायान् द्रवति गच्छति इति द्रव्यं, अर्थात् अपनी पर्यायोंको जो प्राप्त करे उसे द्रव्य कहते हैं। इस अर्थमें दो बातें ध्वनित होती हैं एक तो यह कि द्रव्य अपनेमें अपनी ही पर्यायोंको उत्पन्न करता है, अन्य दूसरेकी पर्यायोंको उत्पन्न नहीं करता। दूसरी बात यह ध्वनित होती है कि पर्यायोंको यह प्राप्त करता है, उसे कहते हैं द्रवति शब्दसे याने अपने आपमें अपनी पर्याय द्रवण कर अवस्था बनाता है इस तरहकी ध्वनि निकलती है और यही तथ्य है प्रत्येक पदार्थ का। यह तो कर्तृसाधनमें व्युत्पत्ति हुई और कर्मसाधनसे इस तरह बनेगा कि तैः द्रूयते इति द्रव्यं अर्थात् पदार्थोंके द्वारा जो द्रुत हो सो द्रव्य है।

अब यहाँ शंकाकार कहता है कि द्रव्यका जब यह अर्थ किया कि जो पर्यायोंको प्राप्त करे सो द्रव्य है। तो इसमें तो द्रव्य और पर्याय भिन्न-भिन्न सिद्ध हो गई। तो क्या इस प्रकार भिन्न है और भिन्न नहीं है, द्रव्य और पर्याय एक ही है, अभेद है, तो उसमें कर्ता कर्मका व्यपदेश नहीं बन सकता, क्योंकि अत्यन्त एक है। जो एक ही निर्विशेष हो उसमें कर्ता कर्मपना नहीं बन सकता। तो द्रव्यका पर्यायसे भेद है तब तो सिद्धान्तका ही घात है और यदि अभेद है तो कर्ता कर्मका व्यवहार नहीं बन सकता। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि द्रव्य और पर्यायोंका परस्परमें कथंचित अभेद निरखा जायगा। द्रव्यदृष्टिसे तो चूंकि सब वही सत् है तो एक सत् होनेके कारण अभेद है, पर पर्याय अवस्थाका नाम है और वह अपने समयमें होता है, अगले समय रहता नहीं, द्रव्य सदा रहता है, इस कारणसे भेद है। तो द्रव्यका और पर्यायोंका कथंचित् भेद होने पर इसमें कर्ता कर्मका व्यवहार सिद्ध होता है। फिर भी ये द्रव्य, द्रव्यके भेद भिन्न सत् नहीं हैं, किन्तु एक ही सत् है सब।

पर्यायोंका पर्यर्थ अब द्रव्यकी पर्याय क्या होती है? इस विषयमें विचार करिये। पर्याय नाम है अवस्था विशेष का। तो जो अवस्था विशेष है वह जीवके बताई गई हैं ५३, जिसे कहते हैं ५३ भाव। जीवके सम्बन्धमें कह रहे हैं तो उन ५३ भावोंमें कुछ तो धर्म परस्पर विरोधी हैं और कुछ धर्म अविरोधी हैं। जैसे जीवत्व पारिणामिकके साथ भव्यत्व या अभव्यत्व हो, और औ भी औदयिक हों, औपशमिक हों, क्षायोपशमिक हों, इनका परस्पर विरोध नहीं है, इसलिए यह अविरोधी धर्म है, पर जैसे नारक हैं, तिर्यच हैं, मनुष्य हैं, देव हैं, ये चार औदयिक भावमें हैं गति, ये तो विरोधी हैं। एक जीवके चारों कैसे संभव हैं? जो मनुष्य हैं वे तिर्यच आदिक नहीं, जो तिर्यच हैं वे मनुष्यादिक नहीं। इस प्रकार पुरुषवेद स्त्रीवेद, नपुंसकवेद ये एक जीवके एक साथ कहाँ सम्भव है? तो कुछ पर्याय याने धर्मविरोधी हैं परस्पर तथा कुछ अविरोधी हैं। इसी तरह पुद्गल द्रव्यमें भी जो रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि गुण हैं, अनादि पारिणामिक हैं वे शुक्ल आदिक सब पर्यायोंके साथ अविरोधी हैं, मगर शुक्ल कृष्ण आदिक ये पर्याय परस्पर विरोधी हैं, एक साथ नहीं रह सकते। तो कहनेका तात्पर्य यह है कि कुछ विरोधी धर्म होते हैं, कुछ अविरोधी धर्म होते हैं और कुछ भाव नैमित्तिक होते, कुछ अनैमित्तिक होते। जैसे जीवत्व यह अनैमित्तिक है, पारिणामिक है, क्रोधादिक नैमित्तिक हैं। तो ऐसे सब यथासम्भव जो अवस्थायें हैं इनको पर्याय कहते हैं।

अभिन्न तत्त्वोंमें भी द्वन्द्व समासकी सिद्धि इस सूत्रमें बतलाया जा रहा है कि केवलज्ञानका विषय समस्त द्रव्य और पर्यायोंका है। यहाँ शब्द दिया है सर्वद्रव्यपर्यायिषु। जिसका अर्थ है समस्त द्रव्य और समस्त पर्यायों में। तो इसका समास किस तरह है? द्रव्य और पर्याय, ऐसा द्वन्द्व समास है जिसकी व्युत्पत्ति है द्रव्याणि च पर्यायाः च इति द्रव्यपर्यायाः, द्रव्य और पर्यायों केवलज्ञानके विषयभूत हैं अर्थात् केवलज्ञान द्रव्य और पर्यायोंको जानता है। तो यहाँ शंकाकार कहता है कि इसका द्वन्द्व समास करनेसे यह भाव निकला कि द्रव्य अलग चीज है, पर्याय अलग चीज है। जैसे कोई कहे कि नीम, पीपल, बट आदि वे सब न्यारे-न्यारे हैं ना, तभी उनमें द्वन्द्व बनता है तो द्वन्द्व समास करने पर तो द्रव्य और पर्याय भिन्न-भिन्न हो जायेंगे।

इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह एकांत नियम ठीक नहीं है। द्वन्द्व समास भिन्न पदार्थोंमें भी होता है और एक पदार्थके ही गुणगुणी आदिक व्यवहार करके कथंचित भेद कल्पनामें लाकर उनका भी द्वन्द्व समास होता है। जैसे कहेंगे कि वृक्षत्व और नीम या गोत्व और गोपिण्ड, गौ और गौ जाति। तो अभेदमें भी तो व्यवहार होता है द्वन्द्व रूपसे बोलने का। यहाँ वैशेषिक यह कह सकते हैं कि सामान्य विशेष भी तो भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं। सो इनका निराकरण न्याय ग्रंथोंसे समझना। निष्कर्ष यह है कि सामान्य विशेष भिन्न-भिन्न चीज नहीं हैं। एक ही पदार्थमें सामान्य और विशेषत्व है।

द्रव्यपर्यायिषुमें शब्दोंका तत्पुरुष समास करने पर अनिष्ट आपत्ति अब यहाँ शंकाकार कहता है कि हम यदि तत्पुरुष समास कर दें तो क्या हानि है? द्रव्याणांपर्यायः इति द्रव्यपर्यायाः, याने सर्व द्रव्योंकी पर्यायोंको केवलज्ञान जानता है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यदि यहाँ तत्पुरुष समास इष्ट होता अथवा तत्पुरुष समासका भेद अभीष्ट होता तो द्रव्य ही शब्द क्यों दिया जाता? सीधा कह देते कि केवलज्ञान सर्वपर्यायोंको जानता है, क्योंकि पर्यायों तो द्रव्यकी ही होती हैं, अवस्तुके तो नहीं होतीं। तो द्रव्य शब्दका यह ग्रहण ही यह बात कह रहा है कि तत्पुरुष समासका कोई अर्थ नहीं बनाना, किन्तु यह अर्थ करना कि केवलज्ञानका समस्त द्रव्य और समस्त पर्यायोंमें विषयका नियम है। और ऐसा समास बनाने पर कि केवलज्ञान द्रव्यकी पर्यायोंको जानता तो इसका यह भी अर्थ हो सकता कि केवलज्ञान पर्यायोंको जानता, द्रव्योंको नहीं जानता, क्योंकि तत्पुरुष समासमें उत्तर पदार्थ प्रधान होता है। जैसे कोई कहे कि राजाके लड़कोंको बुलावो तो कोई राजाको तो न बुलायेगा? जो उत्तरमें कहा गया है उसीका ही ग्रहण होगा तत्पुरुष समास में। तो ऐसे ही अगर यह तत्पुरुष समास कर दिया जाये कि द्रव्योंकी पर्यायोंको जानता है तो यहाँ फिर द्रव्य ज्ञात न रहे, यह भाव बन जाता है। शंकाकार कहता है कि जब सब पर्यायों जान ली गईं केवलज्ञानके द्वारा, तब फिर कुछ अज्ञात न रहा, क्योंकि पर्यायोंसे भिन्न द्रव्य कुछ नहीं है। पर्याय जान लिया तो द्रव्य तो अपने आप ही जान लिया समझिये।

समाधान फिर तो शंका क्या है? यह तो समाधानमें मदद दे रहा। तो ऐसा है कि समस्त पर्यायोंके जान लेने पर कुछ भी अज्ञात नहीं रहता, क्योंकि पर्यायोंसे भिन्न द्रव्य नहीं है तो तो फिर

तो सूत्रमें द्रव्य ग्रहण करना ही न चाहिए। सिर्फ यह कहा जाये कि केवलज्ञान सब पर्यायोंको जानता है तो सब कुछ आ गया। तो सूत्रमें द्रव्य शब्दका ग्रहण अनर्थक हो जायगा। पर आचार्य स्वामीने सूत्रमें द्रव्य शब्द दिया है। तो इससे ही सिद्ध होता है कि यहाँ तत्पुरुष समाज न करना, किन्तु द्वन्द्व समास करना चाहिए, याने केवलज्ञान समस्त द्रव्यों को और समस्त पर्यायों को जानता है। शंकाकार कहता है कि इसमें द्वन्द्व समास भी कर दें फिर भी द्रव्यका ग्रहण करना अनर्थक है, क्योंकि पर्यायसे भिन्न द्रव्य कुछ नहीं उपलब्ध होता। इसके समाधानमें कहते हैं कि यह दोष न देना, क्योंकि द्रव्य और पर्याय यद्यपि एक सत् हैं। पर संज्ञा लक्षण आदिक भेदोंसे उनके भेदकी उत्पत्ति होती है।

सूत्रमें सर्व शब्द देनेकी सार्थकता अब शंकाकार कहता है कि चलो सब शब्दोंका अर्थ ठीक निकला, मगर सूत्रमें 'सर्व' शब्दका देना बिल्कुल अनर्थक है, क्योंकि जब बहुवचन शब्द कह दिया द्रव्यपर्यायेषु केवलस्य, तो द्रव्यपर्यायेषु ऐसा बहुवचनान्त जब शब्द आ गया तो बहुवचनका अर्थ है सब, बहुत। तो फिर सर्व शब्द सूत्रमें देनेकी क्या जरूरत है? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि द्रव्यपर्यायेषु। ऐसा बहुवचन कहने पर अर्थ तो लग जायेंगे अनेक, लेकिन निर्विशेषका याने कुछ भी शेष न बचे, समस्त आ जाय, ऐसा यहाँ भाव है कि लोक और अलोक इन तीन कालोंमें रहने वाली अनन्त पर्यायें सब कुछ केवलज्ञानके विषय हैं, ऐसा बतानेके लिए यहाँ सर्व शब्द दिया है और इससे यह भी ध्वनित होता है कि जितना लोक है, समस्त पर्यायें हैं, अनन्तानन्त हैं, उतनी ही अगर और भी होवें तो उनको भी जाननेकी सामर्थ्य है केवलज्ञान में। यह भी शब्दोंसे सिद्ध होता है। इस प्रकार केवलज्ञानके विषयमें यह युक्त ही कहा गया सूत्रमें कि केवलज्ञानका सर्व द्रव्य और सर्व पर्यायोंमें विषयका नियम है। यहाँ तक मति आदिक ज्ञानोंका विषयका निबन्ध बताया। अब इतना बताने पर भी यह ज्ञान नहीं हो सकता कि एक आत्मामें एक साथ कितने हो सकते हैं? सो अब इस विषयको स्पष्ट करनेके लिए कहते हैं।

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥ ३० ॥

एक जीवमें एक साथ कितने ज्ञान हो सकनेकी संभवताका प्रतिपादन एक आत्मामें एक साथ एकसे लेकर चार पर्यन्त ज्ञान लगा लेना चाहिए। याने किसी आत्मामें एक ही ज्ञान होता है तो वह केवलज्ञान ही होता है, दूसरा नहीं। किसी आत्मामें दो ज्ञान हों तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो ज्ञान होंगे। किसी आत्मामें तीन ज्ञान होते हैं, तो मति, श्रुत, अवधि ये तीन होंगे या किसी महामुनिके मति, श्रुत, मनःपर्यय ये तीन होंगे। जिस आत्माके चार ज्ञान होते हैं उसके याने मुनिराजके मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ये चार ज्ञान होंगे। ५ ज्ञान एक साथ नहीं हो सकते। इसका कारण यह है कि चार ज्ञान तो क्षायोपशमिक हैं और केवलज्ञान क्षायिक है। जहाँ क्षायिक ज्ञान होता है वहाँ उस जातिका क्षायोपशमिक भाव नहीं रह सकता। इस सूत्रमें जो एकादीनि शब्द कहा है उसमें बहुत रहस्य गर्भित है। जैसे एक शब्दका अर्थ क्या है? पहले यह ही विचारणीय हो जाता है, क्योंकि लोकमें

एक शब्दकी अनेक अर्थोंमें प्रसिद्धि है। कहीं तो एकसे संख्या अर्थ लिया जाता, जैसे एक, दो, तीन आदिक। कहीं एक शब्दका अर्थ भिन्न माना जाता, जैसे व्याकरण या न्याय आदिकमें बहुतमें वर्णन आता कि एक आचार्यका यह कहना है, एकका यह कहना है, तो मायने भिन्न-भिन्न हो गए। अन्य आचार्यका यह कहना, अन्य आचार्यका यह कहना, तो कहीं एकका अर्थ भी अन्य भी होता है। कहीं एकका अर्थ असहाय होता, मायने जो स्वयं समर्थ है, जिसको अन्यकी सहायताकी जरूरत नहीं है, ऐसा अर्थ होता है। जैसे वे एक ही विचरते रहते हैं, अकेले ही घूमते रहते हैं। कहीं एक शब्दका अर्थ होता है प्राथम्य मायने प्रथम बार ही होने वाला या पहले नम्बरमें आया हुआ।

जैसे कोई आया हो नया-नया आदमी तो कहते हैं कि इसका तो एक ही आगमन है मायने प्रथम ही आना हुआ है तो कहीं एक शब्दका अर्थ प्रथम भी होता है। कहीं एक शब्दका प्रधान अर्थ होता है। यह तो एक ही है याने यह ही प्रधान है अथवा जैसे कहते हैं कि राजा एकके द्वारा मारी गई सेना की फिरसे रचना कर रहा है, तो यहाँ एकका अर्थ प्रधान हो गया। किसी खास प्रधानके द्वारा मारी गई सेना थी। तो इन एकके अनेक अर्थोंमें से कौनसा अर्थ लेना चाहिए? तो यहाँ संख्याका भी अर्थ सम्भव हो सकता है। उससे भी सूत्रका सही अर्थ लिया जायेगा। जैसे एकको आदि लेकर चार पर्यन्त ज्ञान लगा लेना चाहिए याने एक भी हो, दो भी हों, तीन भी हों, चार भी हों एकका असहाय अर्थ भी लिया जा सकता। उस एकको आदि लेकर मायने उस असहाय समर्थ केवलज्ञानको आदि लेकर, जो असहाय ज्ञान हुआ उसको आदि लेकर चार ज्ञान हो सकते हैं। असहाय ज्ञान केवलज्ञान होता। तो केवलज्ञान यों एक होता। दो होते तो मति, श्रुत आदिक रूपसे लेते, और एकका अर्थ प्रत्यक्ष भी लिया जा सकता याने प्रथम ही जो होता हो याने केवलज्ञान उसको आदिक कर चार पर्यन्त लगा लेना चाहिए। मायने एक भी होता, दो भी होते, तीन भी होते और चार भी होते।

आदि शब्दका अर्थ अवयव वा सामीप्य करनेपर मतिश्रुत आदि रूपसे चार तक याने एकसे लेकर चार तक लगा लेनेका भाव यहाँ आदि शब्दके अर्थ अनेक होते हैं, उनमेंसे आदिका अर्थ अवयव करनेपर परोक्षका अवयव मतिज्ञान लिया जा सकता है, उसके साथ श्रुत होता ही है। यहाँ कोई शंका कर सकता है कि एकका अवयव अर्थ जब लिया तो परोक्षका आदि अवयव ज्ञान तो मतिज्ञान है तो क्या मतिज्ञान भी अकेला होता है? तो ऐसी शंका न करना, क्योंकि जहाँ मति होगा वहाँ श्रुत होगा ही और जहाँ श्रुत होगा वहाँ मति होगा ही। याने जीवोंके अनादिसे मति और श्रुत चले आये हैं। केवलज्ञान होने पर ही मति, श्रुत मिटते हैं। तो मति जहाँ ग्रहण किया वहाँ उसके साथ श्रुत ले लिया जायेगा या आदि शब्दका अर्थ यहाँ किया जाये समीप, क्योंकि आदि शब्दके भी अनेक अर्थ होते हैं। कहीं आदिका अर्थ अवयव है।

जैसे कहते हैं कि वह ऋग्वेदका अध्ययन करता है। ऋग्वेदका एक अंग है मायने ऋग्वेदके अवयवका अध्ययन करता है। कहीं व्यवस्था अर्थ होता है आदिका। जैसे ब्राह्मण आदिक चार वर्ण होते हैं तो यह ब्राह्मण शब्द व्यवस्था आदिककी सूचना देता है। कहीं आदिका प्रकार अर्थ

भी होता। जैसे सर्प आदिकसे दूर रहना चाहिए तो आदिकसे मतलब सर्प और सर्प जैसे ही अन्य जीव-जंतुवोंसे अलग रहना चाहिए। आदिका अर्थ कहीं समीप भी होता जैसे नद्यादि क्षेत्र अर्थात् नदी है समीपमें जिसके ऐसा क्षेत्र। तो इसमें आदि शब्दसे समीप अर्थ लिया। तो एकका आदिक मायने समीप वाला कौन हुआ? श्रुतज्ञान।

यहाँ भी कोई कह सकता है कि तब तो इसका अर्थ श्रुतज्ञान ही लिया जायगा। मतिज्ञान अलग हो गया। सो यह बात यों नहीं कि चाहे मतिका नाम लो, चाहे श्रुतका नाम लो, दोनों ही एक जीवके छद्मस्थोंके होते हैं। अथवा यहाँ आदिका अर्थ अवयव ले लो। एकका आदि, एकका अर्थ हो गया परोक्ष, क्योंकि दो प्रकारके ज्ञान कहे गए परोक्ष और प्रत्यक्ष, तो परोक्षका आदि मायने परोक्षका अवयव मतिज्ञान। तो इस तरह एकादीनि शब्दमें अनेक अर्थ बसे हुए हैं। यहाँ एक शब्दसे जब मति या श्रुतका संकेत होता है तो यह शंका न रखनी कि यह तो एक अकेला किसीके होता ही नहीं, फिर इस एकका अर्थ मतिज्ञान कैसे ले लिया जाय? यह शंका यों न रखना कि यहाँ एक शब्दसे जब मतिका संकेत है और उसके साथ श्रुतका है तो यह एक शब्द संख्यावाची न रहा। मति, श्रुत आदिक चार पर्यन्त लगाना चाहिए। तो चार पर्यन्तमें यह ध्वनित हो गया कि एकसे लेकर चार तक। जब एक शब्दका अर्थ अवयवरूप लिया जाये तो यहाँ एक शब्द संख्यावाची न रहा।

संख्यावाची एक शब्द माननेपर सुगम स्पष्ट अर्थ संख्यावाची एक 'एक' शब्द मानने पर तो अर्थ होगा एकसे लेकर चार तक 'एकादीनि आचतुर्भ्यः' एकसे लेकर चार पर्यंत, तो कहाँसे लेकर? जहाँसे शुरू होती हो संख्या। तो आचतुर्भ्यः इससे ही यह अर्थ बन गया कि एकसे लेकर चार पर्यंत अथवा जब एकको संख्यावाची मानेंगे तो मति, श्रुत आदिक किसीका भी संकेत न होगा। तब यह होगा कि एक आदिक चार पर्यंत एक भी हो, दो भी हो, तीन भी हो और चार भी हो। इससे सूत्रका अर्थ हुआ कि एक आत्मामें एकसे लेकर चार पर्यंत ज्ञानका विभाग करना चाहिए। अब एक होता है तो केवलज्ञान, क्योंकि वह असहाय ज्ञान है। अन्य ज्ञान क्षयोपशमनिमित्तक हैं। केवलज्ञानके साथ नैमित्तिक ज्ञान नहीं हो सकता।

केवलज्ञानके साथ अन्य अधूरे विकासोंके न होनेके सिद्धान्तमें की जा सकने वाली कुछ शंकाओंका समाधान यहाँ कोई यह शंका रख सकता है कि जब एक बड़ा ज्ञान हो गया तो छोटे ज्ञान तो होंगे ही। उनका अभाव क्यों बताया जा रहा? अथवा जैसे जब सूर्यका उदय है तो सूर्यकी प्रभासे नक्षत्रोंकी प्रभा दब गयी, मगर नक्षत्र तो अपनी जगह अपना व्यापार कर ही रहे हैं, ऐसे ही जब केवलज्ञान हो गया तो छोटे-छोटे मति, श्रुत आदिक ज्ञान तो होंगे ही। भले ही केवल महान् ज्ञान है और उससे आविभूत हो गए, किन्तु अपने प्रयोजनसे कुछ व्यापार तो भी करते ही रहते होंगे। तब केवलीभगवानमें क्षायोपशमिक ज्ञानोंका अभाव नहीं कहा जा सकता।

इस शंकाका समाधान यह है कि क्षायिक ज्ञान समस्त ज्ञानावरणके क्षयसे हुआ है। वहाँ ज्ञानावरणकी कोई प्रकृति न रही। तो जब ज्ञानावरण प्रकृति ही नहीं है तो क्षयोपशम किसका? फिर

क्षायोपशमिक ज्ञानका क्या मतलब? क्षायोपशमिक ज्ञान सम्भव नहीं हो सकता। जहाँ सर्व शुद्धि प्राप्त हो गयी उस साधकके प्रादेशिक अशुद्धि नहीं रह सकती। यहाँ शंकाकार यह कह सकेगा कि आगममें भी तो बताया है कि पंचेन्द्रिय जीव असंज्ञी पंचेन्द्रियसे लेकर अयोगकेवली पर्यंत होते हैं। जब अयोगकेवली, सयोगकेवली पंचेन्द्रिय हैं, इन्द्रियवान हैं तो उनके कार्यज्ञान भी होना चाहिए। तो यह शंका यों युक्त नहीं है कि शंका रखने वाले लोगोंने आगमके अर्थका सही बोध नहीं कर पाया। आगममें सयोगकेवली अरहंत भगवान और अयोगकेवली अरहंतदेवको पंचेन्द्रिय जो कहा है सो द्रव्येन्द्रियकी अपेक्षासे कहा गया है, भावेन्द्रियकी अपेक्षासे नहीं। यदि भावेन्द्रियकी दृष्टिसे प्रभु पंचेन्द्रिय होते, भावेन्द्रिय कहते हैं ज्ञान, बुद्धि विचारकों, अगर यह बात होती तो वहाँ केवलज्ञान भी न रहता या लौट जाता। केवलज्ञान हो ही न सकता था। इससे यह सिद्ध हुआ कि भाई एक आत्मामें एक ज्ञान होगा तो केवलज्ञान, दो ज्ञान हैं तो मति, श्रुत, कहीं तीन ज्ञान होते तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, इस तरह तीन होते। कहीं चार ज्ञान होते मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान। याने ज्ञान एक आत्मामें एक साथ कभी सम्भव ही नहीं है।

प्रमाणविवरणके पश्चात् कुज्ञान और नयोंका वर्णन आगे किया जानेका संकेत इस अध्यायमें अब तक 'प्रमाणनयैरधिगमः' में कहे गए प्रमाणकी व्याख्या चली। वस्तुस्वरूपका अधिगम होता है प्रमाणके द्वारा और वह प्रमाण है ५ ज्ञानों रूप मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। और इन ५ ज्ञानोंसे पदार्थका अधिगम होता है। तो उन ५ ज्ञानोंका स्वरूप विषय स्वामी आदिक सभी प्रकारका विवरण करके वस्तुस्वरूपकी जानकारीके उपायभूत प्रमाणका भली प्रकार वर्णन किया गया है।

अब इसके बाद नयोंका वर्णन किया जाना चाहिए, क्योंकि संकल्प यही किया था कि प्रमाण और नयोंसे वस्तुस्वरूपका अधिगम होता है। तो जब प्रमाणका वर्णन हो चुका तब नयोंका वर्णन करना चाहिए। तो अब नयोंका वर्णन किया जायेगा, पर बीचमें एक थोड़ासा यह भी अनुषंगसे दिखा दिया जाना सूत्रकारको इष्ट है कि जिन ५ ज्ञानोंका जिक्र किया वह सब सम्यग्ज्ञान है। कहीं ज्ञान विपर्यय भी हुआ करते हैं, मगर पांचों ज्ञान विपरीत नहीं हो सकते। मनःपर्ययज्ञान तो संयमी सम्यग्दृष्टिके ही होता, केवलज्ञान भगवानके ही होता। इसका तो सवाल ही नहीं कि यह विपरीत हो, पर शेष जो मति, श्रुत, अवधिज्ञान हैं ये विपरीत हो सकते हैं। सो उसके सम्बन्धमें आगेके सूत्रमें वर्णन करेंगे। सो प्रसंगवश अब कुमति, कुश्रुत व कुअवधिज्ञानका वर्णन चलेगा। तदनंतर नयोंका वर्णन आवेगा।

॥ मोक्षशास्त्र प्रवचन नवम् भाग समाप्त ॥